शिवस्वरोदयः

म० म० श्री मुरलीधर झा कृतया
भाषा टीकया समलङ्कृतः ।



प्रकाशक—
भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस ।
[ब्रांच—कचौड़ीगली, बनारस]

मूल्य ।=)

ॐ पातालं पाहि वा [illegible] मारोह मेरोः [illegible]
पारावार परम्परां तर तथा व्याघ्रान [illegible]
नव॥ आधिव्याधिपरीहत पदिदं मे वीरुद् सि
श्रीकृष्णेति रसायनं रसय रे [illegible] किं मन्यैरमैः
वक्त्रं पाप महीभृतां भव नगदो [illegible] कल्प सिद्धौषधं
मिथ्याज्ञानं विषाणु [illegible] विम्बोदयः
क्रूर क्लेश महीरु [illegible] तर ज्वाल जालः शिखा
द्वारं निर्वृति सद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णे
द्वयम्॥२॥
[illegible] बलपा [illegible] बलयलग्न दावान
ल [illegible] शिखावली विकलितं [illegible]
अमंद मिलदिंदिरे [illegible] रे निखिल माधुरी मंदि
रे [illegible] मुकुंद मुखचंदिरे चिरमिदं चकोरायतां
[illegible] कल्लोलस्थिताः [illegible] मधितिष्ठतु [illegible]
विधायानर्भ [illegible] स पदि [illegible] विषयान्॥
चिदूत्तान [illegible] नो मधुरमधुराणां चितिकृत
त्रिभंगः [illegible] कस्यां [illegible] ननवनमस्या
[illegible]॥४॥ करुणा [illegible]॥
एतं [illegible] यै [illegible] त्रिभिः सप्ताक्षरैस्त्रिभिः।
छंदैः [illegible] विंशा
स्मरं [illegible]॥१॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शिवस्वरोदयः





महामहोपाध्याय पं० श्रीमुरलीधर झा कृतया

भाषाटीकया समलङ्कृतः

व्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न'

स्व० पं० माधवप्रसादव्यासेन संशोधितः

प्रकाशक

भार्गव पुस्तकालय,

गायघाट, बनारस

[ब्राँच—कचौड़ी गली, बनारस]



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शिवस्वरोदयः

भाषाटीकासमेतः ।



महेश्वरं नमस्कृत्य शैलजां गणनायकम् ।
गुरुं च परमात्मानं भजे संसारतारणम् ॥ १ ॥

महादेव, पार्वती तथा गणेशजी को नमस्कार कर भवसागर से पार करनेवाले परमात्मासरूप गुरुजी को प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

देव्युवाच ।

देवदेव महादेव कृपां कृत्वा ममोपरि ।
सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व मम प्रभो ॥ २ ॥

पार्वती ने कहा—हे देवताओं के भी देव ! हे महादेव ! हे प्रभो ! मेरे ऊपर कृपा करके सब सिद्धियों के करनेवाले ज्ञान को मुझसे कहो ॥२॥

कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्त्तते ।
कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयम् ॥ ३ ॥

हे देव ! ब्रह्माण्ड के निर्णय अर्थात् स्थिति को कहो कि इसकी उत्पत्ति, पालन और प्रलय कैसे होता है ? ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

तत्त्वाद् ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्त्तते ।
तत्त्वे विलीयते देवि तत्त्वाद्ब्रह्माण्डनिर्णयः ॥ ४ ॥

महादेव ने कहा कि यह ब्रह्माण्ड तत्वों से बनता, बिगड़ता और पलता है, इसलिये तत्त्वों से ही इसका निर्णय जानो ॥ ४ ॥

देव्युवाच ।

तत्त्वमेव परं मूलं निश्चितं तत्त्ववादिभिः ।
तत्त्वस्वरूपं किं देव तत्त्वमेव प्रकाशय ॥ ५ ॥

पार्वती ने पूछा कि तत्त्व के जाननेवालों ने ब्रह्माण्ड तत्त्व को मूलतत्त्व कहा है इसलिये तत्त्व का क्या स्वरूप है ? यह प्रकट कीजिये ॥ ५ ॥

ईश्वर उवाच ।

निरञ्जनो निराकार एको देवो महेश्वरः ।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसम्भवः ॥ ६ ॥

महादेव ने जवाब दिया कि माया से रहित एक निराकार परमेश्वर है, उससे आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु ॥ ६ ॥

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वीसमुद्भवः ।
एतानि पञ्च तत्त्वानि विस्तीर्णानि च पञ्चधा ॥ ७ ॥

वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई । ये ही पाँच तत्त्व एक एक में पाँच प्रकार से विस्तार को प्राप्त हुए, याने पञ्चीकरण होने पर पचीस तत्त्व होते हैं ॥ ७ ॥

तेभ्यो ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्त्तते ।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः ॥ ८ ॥

इनसे ब्रह्माण्ड पैदा होता है और इन्हीं में पलता तथा लय होकर सूक्ष्मरूप से रहता है ॥ ८ ॥

पञ्चतत्त्वमये देहे पञ्च तत्त्वानि सुन्दरि ।
सूक्ष्मरूपेण वर्तन्ते ज्ञायन्ते तत्त्वयोगिभिः ॥ ९ ॥

हे सुन्दरि ! इस पञ्चतत्त्व से बनी हुई देह (शरीर) में पाँचों तत्त्व सूक्ष्म रूप से रहते हैं, इनको तत्त्व के ज्ञाता योगी ही जान सकते हैं ॥९॥

अथ स्वरं प्रवक्ष्यामि शरीरस्थस्वरोदयम् ।
हंसचारस्वरूपेण भवेज्ज्ञानं त्रिकालजम् ॥ १० ॥

अब शरीर के स्वरोदय को कहता हूँ, जिसके हंसचार अपने रूप से भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों काल का ज्ञान प्राप्त होता है ॥१०॥

गुह्याद्गुह्यतरं सारमुपकारप्रकाशनम् ।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानानां मस्तके मणिः॥ ११ ॥

यह स्वरोदय ज्ञान बड़ा गुप्त और उपकारों का प्रकाशक है, यह ज्ञान सब ज्ञानों का शिरोमणि है ॥ ११ ॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोधं सत्यप्रत्ययम् ।
आश्चर्यं नास्तिके लोके आधारस्त्वास्तिके जने ॥१२॥

यह ज्ञान सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, अच्छी तरह जानने योग्य है, सत्य में विश्वास को कराता है, नास्तिकों को आश्चर्य में डालता है और आस्तिकों का आधार है ॥ १२ ॥

शान्ते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्त्यैकमानसे ।
दृढचित्ते कृतज्ञे च देयश्चैव स्वरोदयः ॥ १३ ॥

यह स्वरोदय ज्ञान शान्त स्वभाव, कृतज्ञ, सदाचारी (नेक चलन), गुरुभक्त और दृढ़चित्त वाले को देना चाहिये ॥ १३ ॥

दुष्टे च दुर्जने क्रुद्धे नास्तिके गुरुतल्पगे ।
हीनसत्वे दुराचारे स्वरज्ञानं न दीयते ॥ १४ ॥

यह स्वरोदय ज्ञान, दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक और गुरु की स्त्री को बुरी निगाह से देखनेवाले और सत्ताहीन को न देना चाहिये ॥१४॥

शृणु त्वं कथितं देवि देहस्थं ज्ञानमुत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रणीयते ॥ १५ ॥

हे देवि ! शरीरस्थ उत्तम ज्ञान को सुनो जिसके ज्ञानमात्र से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ॥ १५ ॥

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम् ।
स्वरे च सर्वत्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम् ॥ १६ ॥

वेद, शास्त्र, गानविद्या और त्रिलोकी, ये सब स्वर में स्थित हैं, और स्वर ही आत्मा का रूप है ॥ १६ ॥

स्वरहीनश्च दैवज्ञो नाथहीनं यथा गृहम् ।
शास्त्रहीनं यथा वक्त्रं शिरोहीनं च यद्वपुः ॥ १७ ॥

जिस तरह स्वरोदय से हीन ज्यौतिषी, मालिक से सूना घर, शास्त्र से रहित मुख और सिर से जुदा शरीर शोभा नहीं देते, उसी तरह स्वरोदय से हीन ज्ञान भी शोभित नहीं होता है ॥ १७ ॥

नाडीभेदं तथा प्राणतत्त्वभेदं तथैव च ।
सुषुम्नामिश्रभेदं च यो जानाति स मुक्तिगः ॥ १८ ॥

जो नाडीभेद, प्राणतत्व भेद और सुषुम्ना का मिश्रभेद जानता है वह जीवन्मुक्त है ॥ १८ ॥

साकारे वा निराकारे शुभं वायुबलात्कृतम् ।
कथयन्ति शुभं केचित्स्वरज्ञानं वरानने ॥ १९ ॥

हे पार्वती ! कोई कोई लोग व्यावहारिक और पारमार्थिक दशा में वायु के द्वारा किये हुए स्वरज्ञान को शुभ कहते हैं ॥ १९ ॥

ब्रह्माण्डखण्डपिण्डाद्याः स्वरेणैव हि निर्मिताः ।
सृष्टिसंहारकर्ता च स्वरः साक्षान्महेश्वरः ॥ २० ॥

ब्रह्माण्ड के टुकड़े तथा पिण्ड इत्यादि स्वर से बनाए हुए हैं, सृष्टि और प्रलय करने वाला साक्षात् महेश्वर स्वर ही है ॥ २० ॥

स्वरज्ञानात् परं गुह्यं स्वरज्ञानात् परं धनम् ।
स्वरज्ञानात् परं ज्ञानं न वा दृष्टं न वा श्रुतम् ॥ २१ ॥

स्वरज्ञान से बढ़कर गुह्य (छिपाने योग्य), स्वरज्ञान से बढ़कर धन, स्वरज्ञान से परे ज्ञान न देखा है और न सुना है ॥ २१ ॥

शत्रुं हन्यात् स्वरबलं तथा मित्रसमागमः ।
लक्ष्मीप्राप्तिः स्वरबले कीर्तिः स्वरबले सुखम् ॥ २२ ॥

स्वर के बल से शत्रु से लड़े, मित्र से मिले, लक्ष्मी और कीर्ति की प्राप्ति हो; ये सब स्वर के बल से होते हैं ॥ २२ ॥

कन्याप्राप्तिः स्वरबले स्वरतो राजदर्शनम् ।
स्वरेण देवतासिद्धिः स्वरेण क्षितिपो वशः ॥ २३ ॥

विवाह, राजा का दर्शन, देवता की सिद्धि और राजा को वश में करना, ये सब भी स्वर से होते हैं ॥ २३ ॥

स्वरेण गम्यते देशो भोज्यं स्वरबले तथा ।
लघुदीर्घे स्वरबले मलं चैव निवारयेत् ॥ २४ ॥

स्वर के बल से देश विदेश में घूमना पड़ता है, स्वर के बल से भोजन, स्वर के बल से लघुशंका और मल का त्याग होता है ॥ २४ ॥

सर्वशास्त्रपुराणादि स्मृतिवेदाङ्गपूर्वकम् ।
स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्ति किञ्चिद्वरानने ॥ २५ ॥

हे वरानने ! सब शास्त्र, पुराण, स्मृति और साङ्गोपाङ्ग वेद इन सबको जानकर 'स्वर' जानने से बढ़कर कोई दूसरा तत्त्व नहीं है ॥२५॥

नामरूपादिकाः सर्वे मिथ्या सर्वेषु विभ्रमः ।
अज्ञानमोहिता मूढा यावत्तत्त्वं न विद्यते ॥ २६ ॥

जब तक प्राणी को तत्त्वज्ञान नहीं होता है, तब ही तक उसको असत्य 'नाम रूप' आदि वस्तुओं में सत्य का भ्रम होता है और तब ही तक वह मूढ़ भी है ॥ २६ ॥

इदं स्वरोदयं शास्त्रं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम् ।
आत्मघटप्रकाशार्थं प्रदीपकलिकोपमम् ॥ २७ ॥

यह स्वरोदय शास्त्र सब शास्त्रों में उत्तमोत्तम और आत्मारूपी घट में उजेला करने के लिये दीपक की ज्योति के समान है ॥ २७ ॥

यस्मै कस्मै परस्मै वा न प्रोक्तं प्रश्नहेतवे ।
तस्मादेतत्स्वयं ज्ञेयमात्मनो वाऽऽत्मनाऽऽत्मनि ॥२८॥

(इस श्लोक के अर्थ का पूर्व श्लोक के साथ सम्बन्ध है, शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं) और दूसरे जिस किसी को मैंने नहीं कहा है। तुम्हारे प्रश्न के हेतु याने तुमने पूछा इसी लिये मैंने कहा। यह प्रश्न ही से स्वयं जानना, जैसा अपने ही से अपने में अपना ज्ञान होता है ॥२८॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवताः ।
न च विष्टिर्व्यतीपातो वैधृत्याद्यास्तथैव च ॥ २९ ॥

इनमें तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, देवता, भद्रा, व्यतीपात और वैधृति आदि का दोष नहीं है ॥ २९ ॥

कुयोगो नास्ति नो देवि भविता वा कदाचन ।
प्राप्ते स्वरबले शुद्धे सर्वमेव शुभं फलम् ॥ ३० ॥

हे देवि ! इसमें कोई कुयोग नहीं है और न कभी होगा, जब तक स्वर का बल शुद्ध रहता है, तब तक सब फल शुभ होता है ॥ ३० ॥

देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तरात् ।
ज्ञातव्याश्च बुधैर्नित्यं स्वदेहज्ञानहेतवः ॥ ३१ ॥

बुद्धिमानों को अपनी देह के ज्ञान के लिये सर्वदा देह में फैली हुई बहुतसी नाड़ियों को जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

नाभिस्थानगकन्दोर्ध्वमङ्कुरा इव निर्गताः ।
द्विसप्ततिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥ ३२ ॥

इस देह में नाभि से ऊपर अंकुर के समान बहत्तर हजार (७२०००) नाड़ियाँ फैली हुई हैं ॥ ३२ ॥

नाडीस्था कुण्डलीशक्तिर्भुजङ्गाकारशायिनी ।
ततो दशोर्ध्वगा नाड्यो दशैवाधः प्रतिष्ठिताः ॥ ३३ ॥

नाडियों में सर्प के समान सोती हुई कुण्डलिनी शक्ति है, उससे दस नाड़ियाँ ऊपर की ओर और दश नीचे की ओर गई हैं ॥ ३३ ॥

द्वे द्वे तिर्यग्गते नाड्यौ चतुर्विंशतिसंख्यया ।
प्रधाना दश नाड्यस्तु दश वायुप्रवाहकाः ॥ ३४ ॥

दो २ नाडी तिर्छी गई हैं, ऐसी चौबीस नाड़ियों में १० नाड़ियाँ प्रधान वायुप्रवाहक है ॥ ३४ ॥

तिर्यगूर्ध्वास्तु या नाड्यो वायुदेहसमन्विताः ।
चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वाः प्राणसमाश्रिताः ॥ ३५ ॥

तिर्छी, ऊपर और नीचे वायु देह के आश्रित सब नाड़ियाँ देह में चक्र के समान हैं और प्राण के अधीन हैं ॥ ३५ ॥

तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्तमाः ।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥ ३६ ॥

उन सब नाड़ियों में दस नाड़ी श्रेष्ठ हैं और उनमें भी वे इड़ा,पिङ्गला और सुषुम्ना तीन उत्तम हैं ॥ ३६ ॥

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी तथा ॥ ३७ ॥

गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और दसवीं शङ्खिनी ॥ ३७ ॥

इडा वामे स्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ॥३८॥

इड़ा नाड़ी वामभाग में, पिंगला दक्षिण भाग में, सुषुम्ना मध्यदेश में और गान्धारी वामनेत्र में ॥ ३८ ॥

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।
यशस्विनी वामकर्णे आनने चाप्यलम्बुषा ॥ ३९ ॥

दक्षिणनेत्र में हस्तिजिह्वा, दक्षिणकर्ण में पूषा, वामकर्ण में यशस्विनी और मुख में अलम्बुषा ॥ ३९ ॥

कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शङ्खिनी ।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडिकाः ॥४०॥

लिङ्गदेश में कुहू और गुह्यस्थान में शङ्खिनी, इस प्रकार शरीर के द्वारों में दश नाड़ियाँ हैं ॥ ४० ॥

इडा पिङ्गला सुषुम्ना प्राणमार्गे समाश्रिताः ।
एता हि दश नाड्यस्तु देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥४१॥

इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना ये तीनों प्राणमार्ग में आश्रित हैं। ये दश नाड़ी देह के मध्य में स्थित हैं ॥ ४१ ॥

नामानि नाडिकानां तु वातानां तु वदाम्यहम् ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥४२॥

नाड़ियों के आश्रय जो वायु हैं, उनके नाम मैं कहता हूँ— प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ॥ ४२॥

नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ।
हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ॥ ४३ ॥

नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त और धनञ्जय। प्राण वायु हृदय में हमेशा रहता है और अपान गुदा में ॥ ४३ ॥

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ।
व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधाना दश वायवः ॥ ४४ ॥

नाभिदेश में समान, कण्ठ के मध्य में उदान और सब शरीर में व्यान वायु रहता है, ये दश वायु प्रधान हैं ॥४४॥

प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ।
तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ॥ ४५॥

पाँच प्राण आदि और पाँच नाग आदि वायु हैं, उन नाग आदि पाँचों के भी स्थान को मैं कहता हूँ ॥ ४५ ॥

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।
कृकलः क्षुतकृज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥४६॥

उलगने में नाग, आँखों के खोलने में कूर्म, छींकने में कृकल और जंभाई में देवदत्त वायु जानना ॥४६॥

न जहाति मृतं वाऽपि सर्वव्यापी धनञ्जयः ।
एते नाडीषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ॥४७॥

बिलकुल शरीर में व्यापी धनञ्जय वायु मृत शरीर को भी नहीं छोड़ता और जीवरूपी वायु सब नाड़ियों में घूमते हैं ॥ ४७ ॥

प्रकटं प्राणसञ्चारं लक्षयेद्देहमध्यतः ।
इडापिङ्गलासुषुम्नाभिर्नाडीभिस्तिसृभिर्बुधः ॥ ४८ ॥

देह के मध्य में प्रकट जो प्राण का सञ्चार है, उसको इडा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीन नाड़ियों से ही बुद्धिमान् मनुष्य जाने ॥४८ ॥

इडा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
इडा नाडी स्थिता वामा ततो व्यस्ता च पिङ्गला ॥४९॥

वाम भाग में इडा और दहिने भाग में पिंगला कही गई है, इडा नाडी वामरूप से स्थित और पिंगला उलटी स्थित है ॥ ४९ ॥

इडायां तु स्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायां च भास्करः ।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुहंसस्वरूपतः ॥ ५० ॥

इडा में चन्द्रमा, पिङ्गला में सूर्य, सुषुम्ना में शम्भु और शम्भु हंसरूप में स्थित हैं ॥ ५० ॥

हकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारेण प्रवेशनम् ।
हकारः शिवरूपेण सकारः शक्तिरुच्यते ॥ ५१ ॥

स्वर के निकलने में हकार और प्रवेश में सकार कहा है, हकार शिवरूप और सकार शक्तिरूप है ॥ ५१ ॥

शक्तिरूपः स्थितश्चन्द्रो वामनाडीप्रवाहकः ।
दक्षनाडीप्रवाहश्च शम्भुरूपो दिवाकरः ॥ ५२ ॥

वामनाडी का प्रवाहक चन्द्रमा शक्तिरूप से और दक्षिण नाडी का प्रवाहक सूर्य शम्भुरूप से स्थित है ॥ ५२ ॥

श्वासे सकारसंस्थे तु यद्दानं दीयते बुधैः ।
तद्दानं जीवलोकेऽस्मिन् कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ५३ ॥

जब श्वास सकार में स्थित हो उस समय जो दान बुद्धिमान् मनुष्य दे वह इस संसार में कई कोटिगुना फल देता है ॥ ५३ ॥

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्तः समाहितः ।
सर्वमेव विजानीयान्मार्गे वै चन्द्रसूर्ययोः ॥ ५४ ॥

एकाग्रचित्त और सावधानी से योगी देखे तथा चन्द्रमा और सूर्य के मार्ग में ही सबको जान ले ॥ ५४ ॥

ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरे जीवे अस्थिरे न कदाचन ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥ ५५ ॥

जिस समय जीव स्थिर हो उसी समय मनुष्य तत्व का ध्यान करे, और चञ्चल अवस्था में कभी न करे, इससे उसकी इष्टसिद्धि, महालाभ और जय होती है ॥ ५५ ॥

चन्द्रसूर्यसमाभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नरः ।
अतीतानागतज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य सदा चन्द्र और सूर्य के स्वरों का भली प्रकार अभ्यास करते हैं, उनको भूत और भविष्य का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है ॥ ५६ ॥

वामे चामृतरूपा स्याज्जगदाप्यायनं परम् ।
दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयेत् सदा ॥ ५७ ॥

वाम भाग की नाडी इडा अमृतरूप सब जगत् की पोषक है और दक्षिण के चरभाग की पिङ्गला नाडी सदैव जगत् को पैदा करती है ॥५७॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु ।
सर्वत्र शुभकार्येषु वामा भवति सिद्धिदा ॥ ५८ ॥

सुषुम्ना नाड़ी क्रूरा और सब कामों में दुष्ट होती है और वामा नाड़ी सब शुभ कामों में सिद्धि को देती है ॥ ५८ ॥

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा ।
चन्द्रः समस्तु विज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा ॥ ५९ ॥

गमन के समय में वामा और प्रवेश के समय में दक्षिणा शुभ होती है। चन्द्रमा को सम और सूर्य को विषम सदैव जानना ॥ ५९ ॥

चन्द्रः स्त्री पुरुषः सूर्यश्चन्द्रो गौरोऽसितो रविः ।
चन्द्रनाडीप्रवाहेण सौम्यकार्याणि कारयेत् ॥ ६० ॥

चन्द्रमा को स्त्री और सूर्य को पुरुष, चन्द्रमा गौर वर्ण और सूर्य कृष्ण वर्ण जानना। जब चन्द्रमा की नाड़ी का प्रवाह हो उस समय सौम्य कार्यों को करे ॥ ६१ ॥

सूर्यनाडीप्रवाहेण रौद्रकर्माणि कारयेत् ।
सुषुम्नायाः प्रवाहेण भुक्तिमुक्तिफलानि च ॥ ६१ ॥

सूर्य नाड़ी के प्रवाह में रौद्र (क्रूर) कामों को करे और सुषुम्ना के प्रवाह में भोग और मुक्तिफल के देनेवाले कामों को करे ॥ ६१ ॥

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करो हि सितेतरे ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि कृतोदयौ ॥ ६२॥

शुक्लपक्ष में प्रथम चन्द्रमा का स्वर और कृष्णपक्ष में प्रथम सूर्य का स्वर चलता है। प्रतिपदा से लेकर तीन २ दिन चन्द्रमा और सूर्य का स्वर बलवान् रहता है ॥ ६२ ॥

सार्धद्विघटिके ज्ञेये शुक्लेकृष्णे शशी रविः ।
वहत्येकदिनेनैव यथा षष्टिघटी क्रमात् ॥ ६३ ॥

ढाई ढाई घटी शुक्लपक्ष में चन्द्रमा, ढाई ढाई घटी कृष्णपक्ष में सूर्य, एक दिन में साठ घटी तक बहते हैं, अर्थात् दोनों स्वरों की क्रम से चौबीस २ आवृत्ति होती है ॥ ६३ ॥

वहेयुस्तद्धटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत् ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुर्विपरीते विवर्जयेत् ॥६४॥

उन प्रत्येक ढाई घटियों में जब पाँच तत्त्व बहते हैं, उस समय में फलादेश करे। प्रतिपदा से लेकर चन्द्रमा और सूर्य के जो दिन कहे गये हैं इससे विपरीत होवे अर्थात् चन्द्रमा के समय में सूर्य का और सूर्य के समय में चन्द्रमा का स्वर चले तो उसको वर्ज दे, क्योंकि वह अशुभ है ॥६४॥

शुक्लपक्षे भवेद्वामा कृष्णपक्षेच दक्षिणा ।
जानीयात् प्रतिपत्पूर्वं योगी तद्गतमानसः ॥ ६५ ॥

शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से लेकर प्रथम वामा और कृष्ण पक्ष में प्रथम दक्षिणा नाडी को योगी एकाग्र अन्तःकरण से जाने ॥ ६५ ॥

शशाङ्कं वारयेद्रात्रौ दिवा वारय भास्करम् ।
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥ ६६ ॥

रात में चन्द्रस्वर को और दिन में सूर्यस्वर को रोके। इस प्रकार अभ्यास में जो तत्पर है, वही योगी है, इसमें संशय नहीं ॥ ६६ ॥

सूर्येण बध्यते सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रेण बध्यते ।
यो जानाति क्रियामेतां त्रैलोक्यं वशगं क्षणात् ॥६७॥

सूर्य के स्वर से सूर्य और चन्द्रमा के स्वर से चन्द्रमा बंद होता है। जो मनुष्य इस क्रिया को जानता है उसके वश में त्रिलोक (आकाश, मर्त्य, पाताल) क्षणमात्र में हो जाता है ॥ ६७ ॥

उदयो चन्द्रमार्गेण सूर्येणास्तमनं यदि ।
तदा ते गुणसंघाता विपरीतं विवर्जयेत् ॥ ६८ ॥

यदि चन्द्रमा के स्वर में सूर्य का उदय हो और सूर्य के स्वर में अस्त हो तो उस समय में अनेक गुणों के समूह पैदा होते हैं और इससे विपरीत (उलटा) हो तो उसको छोड़ दे ॥ ६८ ॥

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाडिका ।
सिद्धिदा सर्वकार्येषुशुक्लपक्षे विशेषतः ॥ ६९ ॥

बृहस्पति, शुक्र, बुध और चन्द्र इन चारों दिन में वाम नाड़ी सब कामों में सिद्धि को देती है और शुक्लपक्ष में यह होवे तो और भी विशेष फल होता है ॥ ६९ ॥

अर्काङ्गारकसौरीणां वासरे दक्षनाडिका ।
स्मर्त्तव्या चरकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः ॥७०॥

चरकार्यों में आदित्य, मंगल और शनैश्चर इन वारों में दक्षिण नाड़ी का स्मरण रखना और इसका फल कृष्णपक्ष में विशेषकर होता है॥ ७०॥

प्रथमं वहते वायुर्द्वितीयं च तथाऽनलः ।
तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारुणी वहेत् ॥ ७१ ॥

पहिली बार वायुतत्त्व, दूसरी बार अग्नितत्त्व, तीसरी बार भूमितत्त्व, चौथी बार वरुणतत्त्व और पाँचवीं बार आकाशतत्त्व वहता है ॥७१॥

सार्धद्विघटिके पञ्च क्रमेणैवोदयन्ति च ।
क्रमादेकैकनाड्यां च तत्त्वानां पृथगुद्भवः ॥ ७२ ॥

ढाई घडी के मध्य में जो पूर्वोक्त पाँचों तत्त्व क्रम से उदित होते हैं वे एक २ नाड़ी में भी क्रम से पृथक् उदित होते हैं ॥ ७२ ॥

अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादश सङ्क्रमाः ।
वृषकर्कटकन्यालिमृगमीना निशाकरे ॥ ७३ ॥

रात और दिन में चन्द्र व सूर्य की बारह संक्रान्ति जानना। उनमें वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये संक्रान्ति चन्द्रमा की होती है ॥ ७३ ॥

मेषसिंहौ च कुम्भश्च तुला च मिथुनं धनुः ।
उदयं दक्षिणे ज्ञेयः शुभाशुभविनिर्णयः ॥ ७४ ॥

मेष, सिंह कुम्भ, तुला, मिथुन, धनु ये संक्रान्ति सूर्य की जानना और इस पर से शुभ अशुभ का निर्णय जानना ॥ ७४ ॥

तिष्ठेद् पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिमदक्षिणे ।
दक्षनाड्यः प्रसारे तु न गच्छेद्याम्यपश्चिमे ॥ ७५॥

पूर्व और उत्तर में चन्द्रमा टिकता है, पश्चिम और दक्षिण में सूर्य। दक्षिण नाड़ी के प्रवाह (स्वर) में दक्षिण और पश्चिम दिशा में न जाय ॥ ७५ ॥

वामाचारप्रवाहे तु न गच्छेत पूर्व उत्तरे ।
परिपन्थिभयं तस्य गतोऽसौ न निवर्तते ॥ ७६ ॥

वामनाड़ी के बहने में पूर्व और उत्तर में न जाय, यदि जाय तो उसको शत्रु का भय होता है, वा गया हुआ फिर नहीं लौटता है ॥

तत्र तस्मान्न गन्तव्यं बुधैः सर्वहितैषिभिः ।
तदा तत्र तु संयाते मृत्युरेव न संशयः ॥ ७७ ॥

इसलिए सब तरह से कल्याण को चाहनेवाला उस समय में न जाय, यदि उस समय में जायगा तो मृत्यु होने में सन्देह नहीं है ॥ ७७ ॥

शुक्लपक्षद्वितीयायामर्के वहति चन्द्रमाः ।
दृश्यते लाभदः पुंसां सौम्ये सौख्यं प्रजायते ॥७८॥

यदि शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन सूर्य के प्रवाह में चन्द्रमा बहे, तो मनुष्यों को लाभदायक होता है। उस समय में सौम्य कार्य करने से सुख होता है ॥ ७८ ॥

सूर्योदये यदा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रोदये भवेत् ।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि दिवारात्रिगतान्यपि ॥ ७९ ॥

जिस समय सूर्य के उदय में सूर्य और चन्द्रमा के उदय में चन्द्रमा का स्वर हो उस समय दिन वा रात्रि में किये हुए सब काम सिद्ध होते हैं ॥ ७९ ॥

चन्द्रकाले यदा सूर्यः सूर्यश्चन्द्रोदये भवेत् ।
उद्वेगः कलहो हानिः शुभं सर्वं निवारयेत् ॥ ८० ॥

जब चन्द्रमा के समय में सूर्य और सूर्य के समय में चन्द्रमा हो तो उस समय में उद्वेग, कलह और हानि होती है। इसलिए उस समय में सब शुभ काम को रोक दे ॥ ८० ॥

सूर्यस्य वाहे प्रवदन्ति विज्ञा
ज्ञानं ह्यगम्यस्य तु निश्चयेन ।
श्वासेन युक्तस्य तु शीतरश्मेः
प्रवाहकाले फलमन्यथा स्यात् ॥ ८१ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य सूर्य के प्रवाह में अगम्य (जो न देखी सुनी चीज है) वस्तु का ज्ञान निश्चय से कहते हैं, और चन्द्रमा के श्वास का प्रवाह हो तो अन्यथा फल होता है, अर्थात् अगम्य वस्तुका ज्ञान नहीं होता है ॥८१॥

विपरीतलक्षणम्

यदा प्रत्यूषकालेन विपरीतोदयो भवेत् ।
चन्द्रस्थाने वहत्यर्को रविस्थाने च चन्द्रमाः ॥ ८२ ॥

जिस दिन प्रातःकाल से लेकर विपरीत स्वरों का उदय हो, अर्थात् चन्द्रमा के स्थान में सूर्य और सूर्य के स्थान में चन्द्रमा बहे उस समय में वक्ष्यमाण फल जानना ॥ ८२ ॥

प्रथमे मन - उद्वेगं धनहानिर्द्वितीयके ॥
तृतीये गमनं प्रोक्तमिष्टनाशश्चतुर्थके ॥ ८३ ॥

पहले में मन का उद्वेग, दूसरे में धन की हानि, तीसरे में गमन और चौथे में इष्ट का नाश होता है ॥ ८३ ॥

पञ्चमे राजविध्वंसं षष्ठे सर्वार्थनाशनम् ।
सप्तमे व्याधिदुःखानि अष्टमे मृत्युमादिशेत् ॥ ८४ ॥

पाँचवें में राज्य का विध्वंस, छठे में सब अर्थों का नाश, सातवें में व्याधि, दुःख और आठवें में मृत्यु कहा है ॥ ८४ ॥

कालत्रये दिनान्यष्टौ विपरीतं यदा वहेत् ।
तदा दुष्टफलं प्रोक्तं किञ्चिन्न्यून[१] यदा वहेत् ॥८५॥

प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों कालों में यदि स्वरों का उदय पहले कहे हुए से उलटा आठ दिन तक बराबर चले तो उससे दुष्ट फल कहा है और कुछ कम उलटा चले तो शुभ फल जानना ॥८५॥

प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्रः सायङ्काले दिवाकरः ।
तदा नित्यं जयो लाभो विपरीतं विवर्जयेत् ॥ ८६ ॥

---

१ "तुशोभनम्" इति पाठभेदः ।

जिस दिन प्रातः काल और मन्याह्नमें चन्द्रमाका स्वर और सायंकाल से सूर्य का स्वर चले तो उस दिन जय और लाभ कहा है, और उलटा चले तो शुभ काम करना छोड़ दे, अर्थात् अनिष्ट फल होता है ॥ ८६ ॥

वामे वा दक्षिणे वाऽपि यत्र सङ्क्रमते शिवः ।
कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा ॥ ८७ ॥

यात्रा के समय वाम वा दक्षिण जो स्वर चलता हो उसी पाँव को पहले आगे रखकर यात्रा करे तो वह यात्रा सिद्धि को देती है ॥ ८७ ॥

चन्द्रः समपदः कार्यो रविस्तु विषमः सदा ।
पूर्णपादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ॥ ८८ ॥

चन्द्रमा का स्वर चलता हो तो सम पद २, ४, ६....आदि और सूर्य का स्वर चलता हो तो विषम पद १, ३, ५,.... प्रकार पूरा पाँव आगे रखने से यात्रा सिद्धि को देती है ॥ ८८ ॥

यत्राङ्गे वहते वायुस्तदङ्गकरसत्तलात् ।
सुप्तोत्थितो मुखं स्पृष्ट्वा लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ८९॥

जिस अंग का स्वर चलता हो उसी अंग के हाथ के तल से सोकर उठा हुआ मनुष्य मुख का स्पर्श करे तो अपने अभीष्ट फल को पाता है ॥ ८९ ॥

परदत्ते तथा ग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपि च ।
यदङ्गे वहते नाडी ग्राह्यं तेन कराङ्घ्रिणा ॥९० ॥

दूसरे को दान देने में, ग्रहण करने में वा घर से बाहर जाने में जिस अंग की नाड़ी चलती हो, उसी हाथ वा पाँव को आगे करके वस्तु का ग्रहण करे तो आगे के श्लोक से फल जानना ॥ ९० ॥

न हानिः कलहो नैव कण्टकैर्नापि भिद्यते ।
निवर्तते सुखी चैव सर्वोपद्रववर्जितः ॥ ६१ ॥

न हानि हो न कलह हो, न कण्टक (शत्रु) से विंध और वह सुखपूर्वक सब उपद्रवों से बचकर घर लौट आता है ॥ ६१ ॥

गुरुबन्धुनृपामात्येष्वन्येषु शुभदायिनी ।
पूर्णाङ्गैः खलु कर्तव्या कार्यसिद्धिर्मनःस्थिता ॥ ६२ ॥

इस श्लोक का सम्बन्ध ६० श्लोक से जानना । गुरु, बन्धु, राजा, मन्त्री आदि मान्य लोगों से अपनी कार्यसिद्धि के लिए पूर्णांगों से (अर्थात् खाली हाथ से नहीं) मिलने में मनोरथ सिद्ध होता है ॥ ६२ ॥

अग्निचौर्याधर्मघर्षा अन्येषां वादिनिग्रहः ।
कर्त्तव्याः खलु रिक्ताङ्गैर्जयलाभसुखार्थिभिः ॥६३ ॥

अग्नि का दाह, चोरी, अधर्म, घर्षण, (दबाव जमाना) और वादी को निग्रह (दण्ड) करना हो तो रिक्त (खाली) हाथ से ही जय लाभ और सुख की अभिलाषा मनुष्य करे ॥ ६३ ॥

दूरदेशे विधातव्यं गमनं तु हिमद्युतौ ।
अभ्यर्णदेशे दीप्ते तु नराणामिति केचन ॥ ६४ ॥

कोई ऐसा कहते हैं कि दूर देश में जाना हो तो चन्द्रमा के स्वर में और समीप के देश में जाय तो सूर्य के स्वर में गमन करे ॥ ६४ ॥

यत्किञ्चित् पूर्वमुद्दिष्टं लाभादि समरागमः ।
तत्सर्वं पूर्णनाडीषु जायते निर्विकल्पकम् ॥ ६५ ॥

जो कुछ लाभ आदि प्रथम कहा है, वह सब युद्ध के समय में तभी नियत होता है, जब नाड़ी पूरे २ स्वर से चलती हो ॥ ६५ ॥

शून्यनाड्यां विपर्यस्तं यत् पूर्वं प्रतिपादितम् ।
जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥९६॥

शून्य नाड़ी चलती हो तो वह पूर्वोक्त फल शिवजी के कथनानुसार होता है अन्यथा (उलटा) नहीं होता है ॥ ९६ ॥

व्यवहारे खलोच्चाटे द्वेषिविद्यादिवञ्चके ।
कुपितस्वामिचौर्याद्ये पूर्णस्थाः स्युर्भयङ्कराः ॥ ९७ ॥

व्यवहार में, दुष्ट मनुष्य के उच्चाटन में, वैरी को विद्या आदि से ठगने में, स्वामी के क्रोध में और चोरी आदि क्रूर कर्मों में पूर्ण स्वर भय को करता है, अर्थात् अच्छा नहीं है ॥ ९७ ॥

दूराध्वनि शुभश्चन्द्रो निर्विघ्नोऽभीष्टसिद्धिदः ।
प्रवेशकार्ये हेतौ च सूर्यनाडी प्रशस्यते ॥ ९८ ॥

जो मनुष्य दूर मार्ग में जाना चाहे उसको चन्द्रस्वर शुभ है और निर्विघ्न इष्ट सिद्धि को देता है। प्रवेश के कार्य में सूर्य नाड़ी श्रेष्ठ होती है ॥ ९८ ॥

अयोग्ये योग्यता नाड्यो योग्यस्थानेऽप्ययोग्यता ।
कार्यानुबन्धनो जीवो यथा रुद्रस्तथा चरेत् ॥ ९९ ॥

अयोग्य कार्य में नाड़ी की योग्यता और योग्य कार्य में अयोग्यता हो तो कार्य को रोकने वाला एक प्राणी वह है, ऐसा उसको जानना। इस लिये जैसा स्वर हो वैसा ही आचरण मनुष्य करे ॥ ९९ ॥

चन्द्राचारे विषहते सूर्यो बलिवशं नयेत् ।
सुषुम्नायां भवेन्मोक्ष एको देवस्त्रिधा स्थितः ॥ १०० ॥

चन्द्रमा के स्वर चले तो किसी के लिये अपराध को भी मनुष्य सह लेता है, सूर्य का स्वर चले तो बलवान् भी वश में हो सकता है और

सुषुम्ना नाड़ी का स्वर हो तो मोक्ष होना है इस प्रकार एक देव (स्वर) तीन प्रकार से स्थित है ॥ १०० ॥

शुभान्यशुभकार्याणि क्रियन्तेऽहर्निशं यदा ।
तत्तत्कार्यानुरोधेन कार्यं नाडीप्रचालनम् ॥ १०१ ॥

जब रात दिन और अशुभ कार्य किये जायँ तो उस कार्य के अनुसार नाड़ी को चलावे ॥ १०१ ॥

इडा

स्थिरकर्मण्यलङ्कारे दूराध्वगमने तथा ।
आश्रमे धर्मप्रासादे वस्तूनां सङ्ग्रहेऽपि च ॥ १०२ ॥

स्थिर कार्य में, भूषण बनाने में, दूर जाने में, आश्रम में, धर्मप्रसाद (मन्दिर बनवाने) में, और घर की वस्तुओं के संग्रह (संचय) करने में ॥ १०२ ॥

वापीकूपतडागानां प्रतिष्ठास्तम्भदेवयोः ।
यात्रा दाने विवादे च वस्त्रालङ्कारभूषणे ॥ १०३ ॥

बावली, कूप, तालाब इन सबके प्रतिष्ठास्तम्भ के समय में (उत्सर्ग के समय में खम्भा गाड़ा जाता है उसके बनाने में,) देवमूर्ति बनाने में और यात्रा, दान और विवाह में, वस्त्र अलंकार (पुष्पमाला चन्दन आदि शृङ्गार वस्तु) भूषण (गहना) इन सब के लगाने में ॥ १०३ ॥

शान्तिके पौष्टिके चैव दिव्यौषधिरसायने ।
स्वस्वामिदर्शने मित्रे वाणिज्ये कणसंग्रहे ॥ १०४ ॥

शान्तिकाल में, पुष्टि के काम में, शपथ (कसम) करने में, औषधि में, रसायन में, अपने स्वामी के दर्शन में, मित्र (दोस्ती करने) में, व्यापार में और कण (अन्न) के संग्रह में ॥ १०४ ॥

गृहप्रवेशे सेवायां कृषौ च बीजवापने ।
शुभकर्मणि सन्धौ च निर्गमे च शुभः शशी ॥ १०५ ॥

गृहप्रवेश सेवा, खेती, बीजों का बोना, शुभकर्म, सन्धि (मेल) और गमन इन कामों में चन्द्रमा का स्वर (इड़ा) शुभ होता है ॥ १०५ ॥

विद्यारम्भादिकार्येषु बान्धवानां च दर्शने ।
जन्ममोक्षे च धर्मेच दीक्षायां मन्त्रसाधने ॥ १०६ ॥

विद्यारम्भ आदि कामो में, बन्धुओं के दर्शन में, जन्म और मोक्ष में, धर्म में, यज्ञ आदि की दीक्षा में और मन्त्र की सिद्धि में ॥ १०६ ॥

कालविज्ञानसूत्रे तु चतुष्पादगृहागमे ।
कालव्याधिचिकित्सायां स्वामिसम्बोधने तथा ॥१०७॥

काल के जानने में, चतुष्पादों (पशु) के घर में ले आने में, भयंकर रोग की चिकित्सा में, स्वामी के सम्बोधन (बुलाने) में, ॥१०७ ॥

गजाश्वारोहणे धन्वि गजाश्वानां च बन्धने ।
परोपकरणे चैव निधीनां स्थापने तथा ॥ १०८ ॥

हाथी और घोड़े की सवारी में, धनुष को धारण करने में व हाथी और घोड़े को रखने में, परोपकार करने में और निधि (खजाने) की स्थापना करने में ॥ १०८ ॥

गीतवाद्यादिनृत्यादौ नृत्यशास्त्रविचारणे ।
पुरग्रामप्रवेशे च तिलकक्षेत्रधारणे ॥ १०९ ॥

गीत, वादित्र (बाजा) नाच कराने में और नृत्यशास्त्र के विचार में, पुर, (शहर) और ग्राम के प्रवेशमें और तिलक तथा खेत धारण (ग्रहण) इनमें चन्द्र की नाड़ी (इड़ा) शुभ होती है ॥ १०९ ॥

आर्तिशोकविषादे च ज्वरिते मूर्च्छितेऽपि वा ।
स्वजनस्वामिसम्बन्धे अन्नादौ दारुसंग्रहे ॥११०॥

रोग, शोक, विषाद (उदासी) में, ज्वर में, मूर्च्छा में, अपने जन और स्वामी के सम्बन्ध में, और अन्न व काष्ठ के संग्रह में चन्द्र नाड़ी श्रेष्ठ है ॥ ११० ॥

स्त्रीणां दन्तादिभूषायां वृष्टेरागमने तथा ।
गुरुपूजाविषादीनां चालने च वरानने ॥ १११ ॥

स्त्रियों के दाँत (हाथी दाँत) आदि के गहने में, वर्षा के विचार में, गुरु की पूजा में और विष के चालन (बाहर निकालने) में हे पार्वती चन्द्रनाड़ी श्रेष्ठ है ॥ १११ ॥

इडायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादि कर्म च ।
तत्रापि वर्जयेद्वायुं तेज आकाशमेव च ॥११२॥

इड़ा नाड़ी में योगाभ्यास आदि कर्म सिद्ध होता है, तथापि इड़ा नाड़ी में जब वायु और आकाशतत्व बहते हों तब इड़ा को भी छोड़ दे ॥ ११२ ॥

सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति दिवारात्रिगतान्यपि ।
सर्वेषु शुभकार्येषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ॥११३॥

दिन और रात्रि के सब काम इड़ा नाड़ी में सिद्ध होते हैं । सब शुभ कार्यों में चन्द्रमा का चार (इड़ा) उत्तम होता है ॥ ११३ ॥

पिंगला

कठिनंक्रूरविद्यानां पठने पाठने तथा ।
स्त्रीसङ्गे वेश्यागमने महानौकाधिरोहणे ॥ ११४ ॥

कठिन और क्रूर (मारण आदि) विद्याओं के पढ़ने और पढ़ाने

में, स्त्री के संग में, वेश्या के यहाँ जाने में और महा नौका (जहाज) के चढ़ने में ॥ ११४ ॥

भ्रष्टकार्ये सुरापाने वीरमन्त्राद्युपासने ।
विह्वले ध्वंसदेशादौ विषदाने च वैरिणाम् ॥ ११५ ॥

भ्रष्टकार्य, मदिरा का पान, वीरमन्त्र आदि की उपासना, विह्वल होना, देश का विध्वंस, वैरियों के विषप्रयोग में ॥ ११५ ॥

शास्त्राभ्यासे च गमने मृगया पशुविक्रये ।
इष्टिकाकाष्ठपाषाणरत्नघर्षणदारणे ॥ ११६ ॥

शास्त्र का अभ्यास, गमन, मृगया, पशुओं का बेंचना, ईंटा, काठ, पत्थर, रत्न इनका घिसना और चीरना इनमें सूर्य नाड़ी (पिंगला) श्रेष्ठ है ॥ ११६ ॥

गत्यभ्यासे यन्त्रतन्त्रे दुर्गपर्वतरोहणे ।
द्यूते चौर्य्ये गजाश्वादिरथसाधनवाहने ॥ ११७ ॥

गमन का अभ्यास, यन्त्र, तन्त्र, किला और पर्वत पर चढ़ना, द्यूत (जूवा), चोरी करना, हाथी, घोड़ा, रथ इनको साधना और चलाना इनमें ॥ ११७ ॥

व्यायामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादिकसाधने ।
यक्षिणीयक्षवेतालविषभूतादिनिग्रहे ॥ ११८ ॥

व्यायाम (कसरत), मारण, उच्चाटन, षट्कर्मों की सिद्धि करना, यक्षिणी, यक्ष, वेताल, विष, अमृत आदि का निग्रह (रोकना) इनमें ॥ ११८ ॥

खरोष्ट्रमहिषादीनां गजाश्वारोहणे तथा ।
नदीजलौघतरणे भेषजे लिपिलेखने ॥ ११९ ॥

गधा, ऊँट, भैंसा, हाथी, घोड़ा इन पर चढ़ना, नदी के जलवेग से पार उतरना, औषध करना, लीपना और लिखना इनमें ॥ ११९ ॥

मारणे मोहने स्तम्भे विद्वेषोच्चाटने वशे ।
प्रेरणे कर्षणे क्षोभे दाने च क्रयविक्रये ॥ १२० ॥

मारना, मोहना, स्तम्भ (रोक) करना, विद्वेष (वैर) करना, उच्चाटन, वश में करना, प्रेरणा, आकर्षण करना, क्षोभ, दान, खरीदना, वेचना इनमें ॥ १२० ॥

प्रेताकर्षणविद्वेषशत्रुनिग्रहणेऽपि च ।
खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने ॥
भोज्ये स्नाने व्यवहारे दीप्तकार्ये रविः शुभः ॥१२१॥

प्रेत का आकर्षण (बुलाना), शत्रु का निग्रह (दण्ड), खड्ग (तलवार) को हाथ में लेना, वैरी के संग युद्ध, भोग, राजा के दर्शन, भोजन, स्नान, व्यवहार, दीप्त (प्रकाशित) कार्य इनमें सूर्य नाड़ी (पिंगला) शुभ है ॥ १२१ ॥

भुक्तमार्गेण मन्दाग्नौ स्त्रीणां वश्यादिकर्मणि ।
शयनं सूर्यवाहेन कर्तव्यं सर्वदा बुधैः ॥१२२॥

भोजन के द्वारा मन्दाग्नि करना, स्त्रियों को वश में करना, सोना, ये सब काम सूर्य के स्वर के चलते समय में करे ॥ १२२ ॥

क्रूराणि सर्वकर्माणि चराणि विविधानि च ।
तानि सिद्धयन्ति सूर्येण नात्र कार्या विचारणा ॥१२३॥

सब क्रूर कर्म और अनेक सब प्रकार के चरकर्म सूर्य की नाड़ी (पिंगला) में सिद्ध होते हैं, इसमें कोई विचार नहीं करना ॥ १२३ ।

सुषुम्ना

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता ॥१२४॥

जो वायु क्षण भर वाम भाग में और क्षण भर दक्षिण भाग में चले तो उसकी नाड़ी सुषुम्ना जानना और सुषुम्ना सब कार्यों को बिगाड़ने वाली कही है ॥१२४॥

तस्यां नाड्यां स्थितो वह्निर्ज्वलते कालरूपकः।
विषवत्तं विजनीयात् सर्वकार्यविनाशनम् ॥१२५॥

उस नाड़ी में टिकी हुई अग्नि कलारूप जलती है, उस अग्नि को विषवत् और सब कार्यों का नाशक जानना ॥१२५॥

यदाऽनुक्रममुल्लङ्घ्य यस्य नाडीद्वयं वहेत्।
तदा तस्य विजानीयादशुभं नात्र संशयः ॥१२६॥

जब अपने २ स्वाभाविक क्रम को उल्लङ्घन करके जिस पुरुष की दोनों नाड़ी चलें। तो उस पुरुष का अशुभ जानना, इसमें संदेह नहीं है ॥१२६॥

क्षणं वामे क्षणं दक्षे विषमं भावमादिशेत्।
विपरीतं फलं ज्ञेयं ज्ञातव्यं च वरानने ॥१२७॥

क्षण भर वाम भाग और क्षण भर दक्षिण भाग में वायु चले तो उसको विषम कहे और हे पार्वती! उसका विपरीत फल जानना ॥१२७॥

उभयोरेव सञ्चारं विषवन्तं विदुर्बुधाः।
न कुर्यात् क्रूरसौम्यानि तत्सर्वं विफलं भवेत् ॥१२८॥

दोनों नाड़ियों के सञ्चार को विषवान् ऐसा पण्डितजन कहते हैं, इसमें क्रूर और सौम्य कर्म न करें, यदि करे तो वे सब निष्फल होते हैं ॥१२८॥

जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभे जयाजये ।
विषमे विपरीते च संस्मरेज्जगदीश्वरम् ॥१२९॥

जीने, मरने, प्रश्न, लाभ, अलाभ, जय, पराजय, विषम और विपरीत स्वर के चलने में जगदीश्वर का स्मरण करे अर्थात् इस अवस्था में अच्छा और निकम्मा फल ईश्वराधीन है ॥१२९॥

ईश्वरे चिन्तिते कार्यं योगाभ्यासादि कर्म च ।
अन्यत्तत्र न कर्त्तव्यं जयलाभसुखैषिभिः ॥१३०॥

ईश्वर का चिन्तन करके उस समय योगाभ्यास आदि कर्म ही करना और जय लाभ सुखके अभिलाषी उस समय और कोई काम न करे ॥१३०॥

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः ।
शापं दद्याद्वरं दद्यात् सर्वथैवतदन्यथा ॥१३०॥

जब सूर्य की नाड़ी सुषुम्ना बार बार बहे तो उस समय जो शाप अथवा वर दे वह सब अन्यथा (विपरीत) होता है ॥१३१॥

नाडीसङ्क्रमणे कालं तत्वसङ्गमनेऽपि च
शुभं किञ्चिन्न कर्तव्यं पुण्यदानानि कोटिधा ॥१३२॥

नाड़ी के सञ्चलन (मेल) में और तत्वों के सञ्चलन में कोई शुभ कर्म न करना और पुण्य, दान आदि कर्म भी न करना ॥१३२॥

विषमस्योदयो यत्र मनसाऽपि न चिन्तयेत् ।
यात्रा हानिकरी तस्य मृत्युः क्लेशो न संशयः ॥१३३॥

जिस समय विषम स्वर का उदय हो तब मन से भी किसी कार्य की चिन्ता न करे, जो करे उस मनुष्य को यात्रा हानि को करने वाली होती है और मृत्यु अथवा क्लेश होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥१३३॥

पुरो वामोर्ध्वतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्ठतो रविः ।
पूर्णरिक्तविवेकोऽयं ज्ञातव्यो दैशिकैः सदा ॥१३४॥

जब प्रथम वाम स्वर, पीछे चन्द्र स्वर हो और फिर दक्षिण स्वर के पीछे सूर्य स्वर का उदय हो, ये दोनों क्रम पूर्ण और रिक्त (खाली) सदैव जानना ॥ १३४ ॥

ऊर्ध्ववामाग्रतो दूतो ज्ञेयो बामे पथि स्थितः ।
पृष्ठे दक्षे तथाधस्तात् सूर्यवाहागतः शुभः ॥ १३५ ॥

वाम स्वर से पीछे वा पहिले यदि आता हुआ दूत वाम भाग में स्थित हो और दक्षिण स्वर के पीछे वा पहिले आता हुआ दूत दक्षिण भाग में स्थित हो तो शुभ होता है ॥ १३५ ॥

अनादिर्विषमः सन्धिर्निराहारो निराकुलः ।
परे सूक्ष्मे विलीयेत सा सन्ध्या सद्भिरुच्यते ॥ १३६ ॥

अनादि जो विषम सन्धि (सुषुम्ना) निराहार और निराकुल होकर पर सूक्षम ब्रह्म में लीन हो जाय अर्थात् एक रस चलती हुई जिस सुषुम्ना में ब्रह्म की प्राप्ति हो जाय उस सुषुम्ना को सज्जन लोग सन्ध्या कहते हैं ॥१३६॥

न वेदं वेद इत्याहुर्वेदो वेदो न विद्यते ।
परात्मा विद्यते येन स वेदो वेद उच्यते ॥ १३७ ॥

पण्डित जन वेद नहीं कहते और वेद वेद है भी नहीं, किन्तु परमात्मा जिससे जाना जाय उसीको ज्ञानियों ने वेद कहा है ॥ १३७ ॥

न सन्ध्या सन्धिरित्याहुः सन्ध्या सन्धिर्निगद्यते ।
विषमः सन्धिगः प्राणः स सन्धिः सन्धिरुच्यते ॥१३८॥

सन्ध्या को सन्धि पण्डित जन नहीं कहते और न सन्ध्या सन्धि कही जाती है, किन्तु जब विषम सन्धि प्राण हो, वही सन्धि कहाती है ॥

इति नाड़ीभेदः ।

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव सर्वसंसारतारक ।
स्थितं त्वदीयहृदये रहस्यं वद मे प्रभो ॥ १३९ ॥

पार्वती बोली कि हे देवों के देव ! हे महादेव ! हे सब संसार के तारक ! जो रहस्य (गुप्त) आपके हृदय में स्थित है, हे प्रभो ! वह मुझसे कहो ॥ १३९ ॥

ईश्वर उवाच

स्वरज्ञानरहस्यात्तु न काचिच्चेष्टदेवता ।
स्वरज्ञानरतो योगी स योगी परमो मतः ॥१४०॥

महादेव बोले कि स्वरज्ञान के रहस्य से परे कोई इष्ट देवता नहीं है, जो योगी स्वर के ज्ञान में रहता है, वही परम योगी माना गया है १४०

पञ्चतत्त्वाद्भवेत् सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं प्रलीयते ।
पञ्चतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥ १४१ ॥

पञ्च तत्त्वों से सृष्टि होती है और तत्त्व में ही तत्त्व लीन होता है, पञ्च तत्त्व ही परम तत्त्व है और निरञ्जन (ब्रह्म) तत्त्वों से अतीत (परे) है ॥ १४१ ॥

तत्त्वानां नाम विज्ञेयं सिद्धियोगेन योगिनाम् ।
भूतानां दुष्टचिह्नानि जानातीह स्वरोत्तमः ॥१४२॥

योगीजन सिद्धि के योग से तत्त्वों का नाम जानें, जो मनुष्य स्वरों को ही उत्तम समझता है, वह सब प्राणियों के दुष्ट चिन्हों को जान सकता है ॥ १४२ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पञ्चभूतात्मकं विश्वं यो जानाति स पूजितः ॥ १४३॥

जो मनुष्य पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश इन पञ्चभूतात्मक विश्व को जानता है, वही पूजित होता है ॥ १४३ ॥

सर्वलोकस्थजीवानां न देहो भिन्नतत्त्वकः ।
भूर्लोकात् सत्यपर्यन्तं नाडीभेदः पृथक् पृथक् ॥ १४४ ॥

भूलोक से सत्यलोक पर्यन्त सब लोकों में जितने जीव स्थित हैं, उनका देह भिन्न २ तत्त्वरूप नहीं है, परन्तु नाड़ी का भेद पृथक् २ है ॥१४४॥

वामे वा दक्षिणे वाऽपि उदयाः पञ्च कीर्त्तिताः ।
अष्टधा तत्त्वविज्ञानं शृणु वक्ष्यामि सुन्दरि ॥१४५॥

वाम भाग वा दक्षिण भाग में पाँच उदय कहाते हैं । हे सुन्दरि! उन तत्त्वों का विज्ञान आठ प्रकार का है ॥ १४५ ॥

प्रथमे तत्त्वसंख्यानं द्वितीये श्वाससन्धयः ।
तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेव च ॥ १४६ ॥

१ तत्त्वों की संख्या, २ श्वास की सन्धि, ३ स्वरों का चिह्न, ४ स्वरों का स्थान ॥ १४६ ॥

पञ्चमे तस्य वर्णाश्च षष्ठे तु प्राण एव च ।
सप्तमे स्वादसंयुक्ता अष्टमे गतिलक्षणम् ॥१४७॥

५ तत्त्वों का रंग ६ प्राण, ७ स्वाद का संयोग, ८ गति के लक्षण ॥

एवमष्टविधं प्राणं विषुवन्तं चराचरम् ।
स्वरात् परतरं देवि नान्यथा त्वम्बुजेक्षणे ॥ १४८ ॥

इस प्रकार समभाव सेस्थावर और जंगम में व्यापक आठ प्रकार का प्राण होता है । हे देवि ! स्वर से परे दूसरा ज्ञान नहीं है ॥ १४८ ॥

निरीक्षितव्यं यत्नेन सदा प्रत्यूषकालतः ।
कालस्य वञ्चनार्थाय कर्म कुर्वन्ति योगिनः ॥१४९ ॥

प्रातःकाल से लेकर सदैव स्वर को देखना चाहिये। योगी लोग कालक्षेप के लिये कर्म को करते हैं परन्तु उनको स्वर और तत्त्वों की पहचान रहती है ॥ १४९ ॥

श्रुत्योरङ्गुष्ठके मध्याङ्गुल्यौ नासापुटद्वये ।
वदनप्रान्तके चान्याङ्गुलीर्दद्याच्च नेत्रयोः ॥१५०॥

कानों में दोनों अँगूठे, दोनों नासिका के पुटों में मध्य की दोनों अँगुली, मुख के प्रान्त भाग (दोनों होठों के मेल) में और नेत्रों में शेष अँगुली अर्थात् नेत्रों में तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका मुख प्रान्त में लगावे ॥१५० ॥

अस्यान्तस्तु पृथिव्यादितत्त्वज्ञानं भवेत् क्रमात् ।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्बिन्दुभिर्निरुपाधिकम् ॥१५१॥

इसके बीच में पृथ्वी आदि तत्त्वों का ज्ञान क्रम से पीत, श्वेत, अरुण (लाल), और श्याम बिन्दुओं से होता है अर्थात पृथ्वी का पीतवर्ण जल का श्वेत, तेज का लाल वायु का श्याम और आकाश का चित्रवर्ण होता है ॥ १५१ ॥

दर्पणेन समालोक्य यत्र श्वासे विनिःक्षिपेत् ।
आकारैस्तु विजानीयात् तत्त्वभेदं विचक्षणः ॥१५२॥

दर्पण में मुख को देखकर श्वास को छोड़ै और आकारों को देख कर तत्त्व को जाने ॥ १५२ ॥

चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्त्तुलं स्मृतम् ।
बिन्दुभिस्तु मनो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्वलक्षणम् ॥ १५३ ॥

चौकोर, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, विन्दुओं का आकार नेत्रों के आगे दिखाई दे तो आकाश तत्व का लक्षण जानना ॥ १५३ ॥

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्वे वहति चानलः।
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमे ॥ १५४ ॥

मध्य में पृथ्वी, नीचे जल, ऊपर अग्नि और तिरछा वायु का प्रवाह और दो स्वरों का संक्रम चलता हो तो आकाश तत्त्व जानना ॥ १५४ ॥

आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः।
मारुतो नीलजीमूत आकाशः सर्ववर्णकः ॥ १५५ ॥

जल श्वेतवर्ण, पृथ्वी पीत, अग्नि रक्त, पवन नील मेघवर्ण और आकाश सब वर्ण होता है ॥ १५५ ॥

स्थानपरत्व से तत्त्वज्ञान।

स्कन्धद्वये स्थितो वह्निर्नाभिमूले प्रभञ्जनः।
जानुदेशे क्षितिस्तोयं पादान्ते मस्तके नभः ॥ १५६ ॥

दोनों कन्धों पर अग्नि, नाभि के मूल में पवन, जानु में पृथ्वी, चरण के अन्तमें जल और मस्तक में आकाश तत्त्व स्थित रहता है ॥१५६॥

स्वाद से तत्त्वज्ञान प्रकार।

माहेयं मधुरं स्वादे काषायं जलमेव च।
तीक्ष्णं तेजः समीरोऽम्लं आकाशं कटुकं तथा ॥ १५६ ॥

पृथ्वी का स्वाद मीठा, जल का खारा, पवन का खट्टा और आकाश का कटु होता है ॥ १५७ ॥

गति से तत्त्वज्ञान प्रकार।

अष्टाङ्गुलं वहेद्वायुरनलश्चतुरङ्गुलम्।
द्वादशाङ्गुलमाहेयं वारुणं षोडशाङ्गुलम् ॥१५८॥

वायु स्वर आठ अंगुल, अग्नि चार अंगुल, पृथ्वी बारह अंगुल और जल सोलह अङ्गुल चलता है ॥ १५८ ॥

ऊर्ध्वे मृत्युरधः शान्तिस्तिर्यगुच्चाटनं तथा ।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्नभः सर्वत्र मध्यमम् ॥ १५६ ॥

ऊर्ध्वं चले तो मृत्यु, नीचा चले तो शान्ति, तिरछा से उच्चाटन, मध्य चले तो स्तम्भ (रोकना) काम करे और आकाश तत्त्व कार्यों में मध्यम जानना ॥ १५६ ॥

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।
तेजसि क्रूरकर्माणि मारणोच्चाटनेऽनिले ॥१६०॥

पृथ्वी में स्थिर, जल में चरकर्म, तेज में क्रूर और पवन में मारण और उच्चाटन कर्म सिद्ध होते हैं ॥ १६० ॥

व्योम्नि किञ्चिन्न कर्त्तव्यमभ्यसेद्योगसेवनम् ।
शून्यता सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ॥ १६१ ॥

आकाश में कुछ काम न करे किन्तु योगाभ्यास करे । क्योंकि उसमें सब काम खाली होते हैं ॥ १६१ ॥

पृथ्वीजलाभ्यां सिद्धिः स्यान्मृत्युर्वह्नौ क्षयोऽनिले ।
नभसो निष्फलं सर्वं ज्ञातव्यं तत्त्ववेदिभिः ॥ १६२ ॥

पृथ्वी और जल तत्त्व में सिद्धि, वह्नि तत्त्व में मृत्यु, पवनमें क्षय और आकाश तत्त्व में सब काम निष्फल होते हैं ॥ १६२ ॥

चिरलाभः क्षितौ ज्ञेयस्तत्क्षणे तोयतत्त्वतः ।
हानिः स्याद्वह्निवाताभ्यां नभसा निष्फलं भवेत् ॥ १६३ ॥

पृथ्वी से अधिक लाभ, जल से तत्क्षण लाभ, वायु और अग्नि से हानि, इस प्रकार आकाश से निष्फल जानना ॥ १६३ ॥

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुर्यावद्गुरुध्वनिः ।
कवोष्णः पार्थिवो वायुः स्थिरकार्यप्रसाधकः ॥ १६४ ॥

पीतवर्ण, धीरे धीरे वा कम चलनेवाला, ठोड़ी तक जिसका शब्द भारी हो और जो कुछ गरम हो ऐसे पृथ्वी सम्बन्धी स्वर में स्थिर कार्यों को करना ॥ १६४ ॥

अधोवाही गुरुध्वानः शीघ्रगः शीतलः स्थितः ।
यः षोडशाङ्गुलो वायुः स आपः शुभकर्मकृत् ॥१६५॥

जो नीचे को बहै, जिसका शब्द भारी हो, जो शीघ्र चले, जिसकी स्थिति ठण्ढी हो और जो १६ अंगुल हो वह स्वर जल का होता है, उसमें शुभ काम करना ॥ १६५ ॥

आवर्त्तगश्चात्युष्णश्च शोणभश्चतुरङ्गुलः ।
ऊर्ध्ववाही च यः क्रूरः कर्मकारी स तेजसः ॥ १६६ ॥

जो भौं तक चले, बहुत गरम हो, लाल हो, चार अङ्गुल हो और ऊपर को चले वह स्वर तेज का है उसमे क्रूर कर्म करना ॥ १६६ ॥

उष्णः शीतः कृष्णवर्णस्तिर्यग्गाम्यष्टकाङ्गुलः ।
वायुः पवनसंज्ञस्तु चरकर्मप्रसाधकः॥ १६७ ॥

जो शीतोष्ण हो, कृष्णवर्ण हो, तिरछा चले और आठ अङ्गुल हो वह स्वर पवन का है, उसमें चर काम सिद्ध होते हैं ॥ १६७ ॥

यः समीरः समरसः सर्वतत्वगुणावहः ।
आम्बरं तं विजानीयाद्योगीनां योगदायकम् ॥ १६८ ॥

जो स्वर एक रस और सब तत्वों के गुणों को बहे, उस स्वर को आकाश जाने और वही स्वर योगियों को योग का दाता होता है ॥१६८॥

पीतवर्णं चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रितम् ।
भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाहे द्वादशाङ्गुलम् ॥ १६६ ॥

जिसका वर्ण पीत, चौकोर मधुर और मध्य में बहै, जिसका बारह अङ्गुल का प्रवाह हो वह पृथ्वी तत्त्व है और भोग का दाता है ॥१६६॥

श्वेतमर्धेन्दुसङ्काशं स्वादुकाषायमार्द्रकम् ।
लाभकृद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशाङ्गुलम् ॥१७०॥

जिसका वर्ण श्वेत, अर्धचन्द्रमाकार, स्वादु कषैला, गीला और सोलह अङ्गुल का जिसके प्रवाह का प्रमाण हो वह जलतत्त्व है और लाभ को देता है ॥ १७० ॥

रक्तं त्रिकोणं तीक्ष्णं स ऊर्ध्वभागप्रवाहकम् ।
दीप्तं च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुरङ्गुलम् ॥१७१॥

जिसका रङ्ग रक्त, आकार तिकोना, जोर से चले, ऊपर का प्रकाशमान और प्रमाण चार अङ्गुल का हो, वह तत्त्व तेज सम्बन्धी जानना ॥ १७१ ॥

नीलं च वर्तुलाकारं स्वाद्वाम्लं तिर्यगाश्रितम् ।
चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहेऽष्टाङ्गुलं स्मृतम् ॥१७२॥

जो नीला, गोल, खट्टा, तिरछा, चञ्चल हो और जिसका प्रवाह आठ अङ्गुल का हो वह तत्त्व पवनसम्बन्धी जानना ॥ १७२ ॥

वर्णाकारे स्वादवाहेष्वव्यक्तं सर्वगामिनम् ।
मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु निष्फलम् ॥ १७३ ॥

वर्ण, आकार, स्वाद और चलने में (देह भर सब जगह चलने

वाले तत्त्वों में) जिसकी गति अव्यक्त हो वह आकाश तत्त्व जानना और वह सब कार्यों में निष्फल होता है ॥ १७३ ॥

पृथ्वीजले शुभं तत्त्वे तेजोमिश्रं फलोदयम् ।
हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभौ व्योममारुतौ ॥ १७४ ॥

पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्व शुभ होता है, तेज के तत्त्व में मिश्र (शुभाशुभ) फल होते हैं और आकाश वायुतत्त्व में हानि और मृत्यु आदि अशुभ फल होते हैं ॥ १७४ ॥

आपूर्वपश्चिमं पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे तथा ।
वायुश्चोत्तरदिग्ज्ञेयो मध्ये कोणगतं नभः ॥ १७५ ॥

पूर्व से लेकर पश्चिम पर्यन्त पृथ्वीतत्त्व, दक्षिण में तेजतत्त्व, उत्तर में वायुतत्त्व और मध्य की दिशा में आकाश तत्त्व जानना ॥ १७५ ॥

चन्द्रे पृथ्वीजले स्यातां सूर्येऽग्निर्वा यदा भवेत् ।
तदा सिद्धिर्न सन्देहः सौम्यासौम्येषु कर्मसु ॥१७६॥

चन्द्रस्वर में पृथ्वी और जलतत्त्व वा सूर्यस्वर में अग्नितत्त्व जिस समय हो उस समय में अच्छे और बुरे कामों की सिद्धि होती है, इस में सन्देह नहीं है ॥ १७६ ॥

लाभः पृथ्वीकृतोऽह्नि स्यान्निशायां लाभकृज्जलम् ।
वह्नौ मृत्युः क्षयो वायुर्नभःस्थानं दहेत्कचित् ॥१७७॥

दिन में पृथ्वीतत्त्व से और रात्रि ने जलतत्त्व से लाभ होता है। अग्नितत्त्व से मृत्यु, वायुतत्त्व से नाश और आकाशतत्त्व से दाह भी कभी २ हो जाता है ॥ १७७ ॥

जीवितव्ये जले लाभे कृष्यां च घनकर्मणि ।
मन्त्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ॥ १७८ ॥

जीवन, जय, लाभ, कृषि, व्यापार, मन्त्र, युद्ध, प्रश्न, गमन और आगमन इनमें पृथ्वीतत्त्व श्रेष्ठ होता है ॥ १७८ ॥

आयाति वारुणे तत्त्वे शत्रुरस्ति शुभं क्षितौ ।
प्रयाति वायुतोऽन्यत्र हानिमृत्यू नभोऽनले ॥ १७९ ॥

यदि जल का तत्त्व हो तो शत्रु का आगमन, पृथ्वीतत्त्व में शुभ, वायुतत्त्व में शत्रु को चले जाना और आकाश वा अग्नितत्त्व हो तो शत्रु की मृत्यु व हानि होगी ॥ १७९ ॥

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्याज्जीवस्तु जलवातयोः ।
तेजसा धातुचिन्ता स्याच्छून्यमाकाशतो वदेत् ॥१८०॥

यदि किसी के पूछने के समय पृथ्वीतत्त्व हो तो मूल (वृक्ष आदि की जड़) की चिन्ता, जल वा वायुतत्त्व में जीव, तेज के तत्त्व में धातु चिन्ता और आकाशतत्त्व में किसी की चिन्ता न कहे ॥ १८० ॥

पृथिव्यां बहुपादाः स्युर्द्विपदस्तोयवायुतः ।
तेजस्येव चतुष्पादो नभसा पादवर्जितः ॥ १८१ ॥

पृथ्वीतत्त्व में बहुतों के साथ गमन, जल और वायुतत्त्व में अकेला गमन, तैजसतत्त्व में दो मनुष्यों के साथ गमन और आकाशतत्त्व में कहीं भी न जायगा ॥ १८१ ॥

कुजो वह्नी रविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तितः ।
वायुस्थानस्थितो राहुर्दशरन्ध्रप्रवाहकः ॥ १८२ ॥

अग्नितत्त्व में मंगल, पृथ्वीतत्त्व में सूर्य, जलतत्त्व में शनैश्चर और वायुतत्त्व में राहु, तब जानना यदि दक्षिण स्वर चलता हो ॥ १८२ ॥

जलं चन्द्रो बुधः पृथ्वी गुरुर्वातः सितोऽनलः ।
वामनाड्यां स्थिताः सर्वे सर्वकार्येषु निश्चिताः ॥१८३॥

यदि वामस्वर वहता हो तो जलतत्त्व में चन्द्रमा, पृथ्वीतत्त्व में बुध, पवनतत्त्व में वृहस्पति और अग्नितत्त्व में शुक्र जानना । ये सब ग्रह सब कामों में इन पूर्वोक्त तत्त्वों में निश्चय से रहते हैं ॥ १८३ ॥

पृथ्वी बुधो जलं चेन्दुः शुक्रो वह्नी रविः कुजः ।
वायू राहुशनी व्योम गुरुरेव प्रकीर्तितः ॥१८४॥

पृथ्वीतत्त्व में बुध, जलतत्त्व में चन्द्रमा शुक्र, अग्नितत्त्व में सूर्य मंगल, वायुतत्त्व में राहु शनैश्चर और आकाशतत्त्व में वृहस्पति हैं ॥१८४॥

प्रवासप्रश्न आदित्ये यदि राहुर्गतोऽनिले ।
तदाऽसौ चलितो ज्ञेयः स्थानान्तरमपेक्षते ॥ १८५ ॥

यदि कोई मनुष्य विदेश में गए हुए का प्रश्न करे और उस समय सूर्य के स्वर में राहु हो तो वह परदेशी दूसरी जगह जाने चाहता है ॥

आयाति वारुणे तत्त्वे तत्रैवास्ति शुभं क्षितौ ।
प्रवासी पवनेऽन्यत्र मृत्युरेवानले भवेत् ॥ १८६ ॥

यदि प्रश्न करने के समय जलतत्त्व वहता हो तो परदेशी का आगमन पृथ्वीतत्त्व में जहाँ गया है वह वहाँ ही सुखी है, वायुतत्त्व में और जगह चला गया है और अग्नितत्त्व में उसके प्राण का संशय जानना अर्थात् परदेशी मर गया है ॥ १८६ ॥

पार्थिवे मूलविज्ञानं शुभकार्यं जले तथा ।
आग्नेये धातुविज्ञानं व्योम्नि शून्यं विनिर्दिशेत् ॥ १८७ ॥

पृथ्वीतत्त्व में मूल जानना, जलतत्त्व में शुभकार्य, अग्नितत्त्व में धातुओं का ज्ञान और आकाशतत्त्व में किसी के ज्ञान को न कहे ॥ १८७ ॥

तुष्टिः पुष्टी रतिः क्रीडा जयहर्षौ धराजले ।
तेजोवाय्वोश्च सुप्ताक्षो ज्वरकम्पः प्रवासिनः ॥ १८८ ॥

यदि प्रश्न के समय में पृथ्वी वा जलतत्त्व हो तो परदेशी को सन्तोष, पुष्टता, प्रीति, रति, क्रीड़ा, जय और हर्ष और यदि तेज वा वायुतत्त्व हो तो सोना, ज्वर से काँपना कहा है ॥ १८८ ॥

गतायुर्मृत्युराकाशे तत्त्वस्थाने प्रकीर्त्तिता ।
द्वादशैताः प्रत्ययेन ज्ञातव्या दैशिकैः सदा ॥ १८९ ॥

यदि आकाशतत्त्व हो तो परदेशी की मृत्यु जाने, ये बारह प्रश्नतत्त्वों के स्थान में कहे हैं ॥ १८९ ॥

पूर्वायां पश्चिमे याम्यां उत्तरस्यां यथाक्रमम् ।
पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्ठानि विनिर्दिशेत् ॥ १९० ॥

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चारों दिशाओं में क्रम से पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चारों तत्त्व बलिष्ठ हैं ॥ १९० ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पञ्चभूतात्मको देहो ज्ञातव्यश्च वरानने ॥ १९१ ॥

हे पार्वति ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों तत्त्वों से ही शरीर जानना ॥ १९१ ॥

अस्थि मांसं त्वचा नाडी रोमं चैव तु पञ्चमम् ।
पृथ्वी पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ १९२ ॥

इस देह में अस्थि, माँस, त्वचा, नाड़ी और पाँचवाँ रोम ये पाँच गुण पृथ्वी के हैं ॥ १९२ ॥

शुक्रशोणितमज्जाश्च मूत्रं लालं च पञ्चमम् ।
आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ १९३ ॥

वीर्य, रुधिर, मज्जा, मूत्र और पाँचवीं लार ये पाँच गुण जलों के हैं॥

क्षुधा तृषा तथा निद्रा कान्तिरालस्यमेव च ।
तेजः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ १६४ ॥

क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति और आलस्य ये पाँच गुण तेज के हैं ॥

धावनं चलनं ग्रन्थः सङ्कोचनप्रसारणे ।
वायोः पञ्च गुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१६५॥

दौड़ना, चलना, गाँठ देना, सिकोड़ना वा पसारना ये पाँच गुण वायु के हैं ॥ १६५ ॥

रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पञ्चमः ।
नभः पञ्च गुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ १६६ ॥

प्रीति, वैर, लज्जा, भय और पाँचवाँ मोह ये पाँच गुण आकाश के हैं॥

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाशच्चत्वारिंशत् तथाऽम्भसः ।
अग्नेस्त्रिंशत् पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ॥ १६७ ॥

इस देह में पृथ्वी ५० पल, जल ४० पल, अग्नि ३० पल, वायु २० पल और आकाश १० पल होते हैं ॥ १६७ ॥

पृथिव्यां चिरकालेन लाभश्चापः क्षणाद्भवेत् ।
जायते पवने स्वल्पः सिद्धोऽप्यग्नौ विनश्यति ॥१६८॥

पृथ्वीतत्त्व हो तो बहुत दिनों में लाभ और जलतत्त्व हो तो उसी क्षण में, पवनतत्त्व हो तो थोड़ा लाभ होता है, और अग्नितत्त्व हो तो सिद्ध हुआ कार्य नष्ट हो जाता है ॥ १६८ ॥

पृथ्व्याः पञ्च ह्यपां वेदा गुणास्तेजो द्वि वायुतः ।
नभस्येकगुणश्चैव तत्त्वज्ञानमिदं भवेत् ॥ १६९ ॥

पृथ्वी के पाँच, जलों के चार, तेज के तीन, वायु के दो और आकाश का एक गुण जानना ॥ १९९ ॥

फूत्कारकृत् प्रस्फुटिता विदीर्णपतिता धरा ।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्थासदृशं फलम् ॥ २०० ॥

फूत्कार करनेवाली फूटी हुई, फटी हुई और वृथा पड़ी हुई पृथ्वी सब कार्यों में अपनी अवस्था के समान फल देती है ॥ २०० ॥

धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठाऽनुराधा श्रवणं तथा ।
अभिजिदुत्तराषाढा पृथ्वीतत्त्वमुदाहृतम् ॥ २०१ ॥

धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तराषाढ़, ये सात नक्षत्र पृथ्वी के हैं ॥ २०१ ॥

पूर्वाषाढा तथाश्लेषा मूलमार्द्रा च रेवती ।
उत्तराभाद्रपदा तोयतत्त्वं शतभिषक् प्रिये ॥२०२॥

पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा ये सात नक्षत्र जलतत्त्व के हैं ॥ २०२ ॥

भरणी कृत्तिका पुष्यो मघा पूर्वा च फल्गुनी ।
पूर्वाभाद्रपदा स्वाती तेजस्तत्त्वमिति प्रिये ॥२०३॥

भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और स्वाती ये सात नक्षत्र तेजस्तत्त्व के हैं ॥ २०३ ॥

विशाखोत्तरफल्गुन्यौ हस्तचित्रेपुनर्वसु ।
अश्विनी मृगशीर्षं च वायुतत्त्वमुदाहृतम् ॥ २०४ ॥

विशाखा, उत्तराफल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशिरा ये सात नक्षत्र वायुतत्त्व के हैं ॥ २०४ ॥

वहन्नाडीस्थितो दूतो यत् पृच्छति शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं सिद्धिमाप्नोति शून्ये शून्यं न संशयः ॥२०५॥

बहती हुई नाडी की तरफ बैठा हुआ जो दूत शुभ वा अशुभ पूछे वह सब सिद्ध होता है और शून्य में पूछे तो शून्य होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २०५ ॥

पूर्णोऽपि निर्गमः श्वासे सुतत्त्वेऽपि न सिद्धिदः ।
सूर्यश्चन्द्रोऽथवा नृणां संग्रहे सर्वसिद्धिदः ॥ २०६ ॥

पूर्ण भी सूर्यतत्त्व वा चन्द्रतत्त्व श्वास में बहता हो तो भी सिद्धि का दाता नहीं होता, यदि दोनों तत्त्वों का संग्रह (मेल) हो तो सम्पूर्ण सिद्धियों को देता है ॥ २०६ ॥

तत्त्वे रामो जयं प्राप्तः सुतत्त्वे च धनञ्जयः ।
कौरवा निहताः सर्वे युद्धे तत्त्वविपर्ययात् ॥ २०७ ॥

सुतत्त्व में ही रामचन्द्र की जय हुई, श्रेष्ठ तत्त्व में ही अर्जुन की जय हुई और तत्त्व के उलटा होने ही से सब कौरव युद्ध में मारे गये ॥२०७॥

जन्मान्तरीयसंस्कारात् प्रसादादथवा गुरोः ।
केषाञ्चिज्जायते त ववासना विमलात्मनाम् ॥ २०८ ॥

जन्मान्तर के संस्कार से वा गुरु के प्रसाद से किसी शुद्ध अन्तःकरणवाले को तत्त्वों का ज्ञान होता है ॥ २०८ ॥

लं बीजं धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रां सुपीतभाम् ।
सुगन्धां स्वर्णवर्णाभां प्राप्नुयाद्देहलाघवम् ॥ २०९ ॥

'लं' यह बीज पृथ्वीतत्त्व में चतुरस्र (चौकोर) सुवर्ण के समान प्रकाशमान, पीतवर्ण, सुगन्ध ध्यान करे तो ध्यान करनेवाला देह के

लाघव को प्राप्त करता है, याने सब कामों में उसका शरीर हलका रहता है ॥ २०६ ॥

वं बीजं वारुणं ध्यायेत् तत्त्वमर्द्धशशिप्रभम् ।
क्षुत्तृष्णादिसहिष्णुत्वं जलमध्ये च मज्जनम् ॥११०॥

'वं' यह बीज जलतत्त्व में ध्यान करने योग्य है, और अर्धचन्द्र के समान इसका आकार है, इसके ध्यान करनेवाले को भूख और प्यास की बाधा नहीं होती और जल में डूबने का सामर्थ्य होता है ॥२१०॥

रं बीजमग्निजं ध्यायेत् त्रिकोणमरुणप्रभम् ।
बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ॥ २११ ॥

'रं' यह बीज अग्नितत्त्व में तिकोना, रक्त वर्ण, ध्यान करने योग्य है, इसके ध्यान करनेवाले को बहुत अन्न खाने और पानी पीने का सामर्थ्य होता है और वह धूप तथा अग्नि के वेग को सह सकता है ॥२११॥

यं बीजं पावनं ध्यायेद्वर्त्तुलं श्यामलप्रभम् ।
आकाशगमनाद्यं च पक्षिवद्गमनं तथा ॥ २१२ ॥

'यं' यह बीज पवनतत्त्व में ध्यान करने योग्य है और गोल और श्याम रंग होता है, इसके ध्यान करनेवाला आकाश में पक्षियों के समान उड़ सकता है ॥ २१२ ॥

हं बीजं गगनं ध्यायेन्निराकारं बहुप्रभम् ।
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ॥ २१३ ॥

'हं' यह बीज आकाशतत्त्व में ध्यान करने योग्य है, जो निराकार और अधिक कान्ति वाला है। इसके ध्यान करने वाले को त्रिकाल का ज्ञान और अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ होती हैं ॥ २१३ ॥

स्वरज्ञानी नरो यत्र धनं नास्ति ततः परम् ।
गम्यते स्वरज्ञानेन ह्यनायासं फलं भवेत् ॥ २१४ ॥

जिस स्थान में स्वरज्ञानी हो उससे बढ़कर और कोई धन नहीं है, जो मनुष्य स्वर के ज्ञानसें चलता है उसको विना परिश्रमसे फल मिलता है ॥२१४॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव महादेव महाज्ञानं स्वरोदयम् ।
त्रिकालविषयं चैव कथं भवति शङ्कर ॥ २१५ ॥

पार्वती बोलीं कि हे देवों के देव ! हे महादेव ! हे शङ्कर ! इस बड़े स्वरोदय का भूत भविष्यत् वर्तमान विषयक ज्ञान किस प्रकार से होता है॥२१५॥

ईश्वर उवाच ।

अर्थकालजयप्रश्नशुभाशुभमिति त्रिधा ।
एतत्त्रिकालविज्ञानं नान्यद्भवति सुन्दरि ॥ २१६ ॥

महादेव जी बोले कि हे सुन्दरि ! अर्थ, काल, जय, प्रश्न, शुभ, अशुभ इत्यादि में जो भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों को लेकर जो ज्ञान होता है, वह स्वरोदय है ॥ २१६ ॥

तत्त्वे शुभाशुभं कार्यं तत्त्वे जयपराजयौ ।
तत्त्वे सुभिक्षदुर्भिक्षे तत्त्वं त्रिपदमुच्यते ॥ २१७ ॥

तत्त्व के आधीन शुभ अशुभ कार्य, जय पराजय और सुकाल अकाल हैं, इस प्रकार तत्त्व को ही तीनों कालों का कर्त्ता कहते हैं ॥ २१७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव महादेव सर्वसंसारसागरे ।
किं नराणां परं मित्रं सर्वकार्यार्थसाधकम् ॥ २१८ ॥

पार्वती बोलीं कि हे देवों के देव ! हे महादेव ! इस सम्पूर्ण संसार-

समुद्र में मनुष्य का परम मित्र और सब कार्यों का साधक क्या है, सो कहो ॥ २१८ ॥

ईश्वर उवाच ।

प्राण एव परं मित्रं प्राण एव परः सखा ।
प्राणतुल्यः परो बन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने ॥ २१९ ॥

महादेव बोले कि हे पार्वती ! प्राण ही परम मित्र और सखा है । प्राण के समान और दूसरा कोई बन्धु नहीं है ॥ २१९ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथं प्राणस्थितो वायुर्देहः किं प्राणरूपकः ।
तत्त्वेषु संचरन्प्राणो ज्ञायते योगिभिः कथम् ॥ २२० ॥

पार्वती बोलीं कि प्राण में वायु किस प्रकार स्थित है ? और क्या देह प्राणरूप है ? और तत्त्वों के विषय विचारते हुए प्राण को योगी लोग किस प्रकार से जानते हैं ? ॥ २२० ॥

श्रीशिव उवाच ।

कायानगरमध्यस्थो मारुतो रक्षपालकः ।
प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशाङ्गुलः ॥ २२१ ॥

शिवजी बोले कि हे पार्वती ! इस कायारूपी नगर में टिका हुआ प्राणवायु चौकीदार है वह प्राण प्रवेश के समय दस और निकलने के समय बारह अंगुल का है ॥ २२१ ॥

गमने तु चतुर्विंशन्नेत्रवेदास्तु धावने ।
मैथुने पञ्चषष्ठिश्च शयने च शताङ्गुलम् ॥ २२२ ॥

गमन के समय चौबीस २४, दौड़ने के समय बयालीस ४२, मैथुन के समय पैंसठ ६५ और सोने के समय में सौ १०० अंगुल का होता है ॥२२२॥

प्राणस्य तु गतिर्देवि स्वभावाद्द्वादशाङ्गुला ।
भोजने वचने चैव गतिरष्टादशाङ्गुला ॥ २२३ ॥

हे देवि ! प्राण की स्वाभाविक गति बारह १२ अंगुल है, तथा भोजन और बोलने के समय वह अट्ठारह १८ अंगुल हो जाती है ॥ २२३ ॥

एकाङ्गुले कृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता ।
आनन्दस्तु द्वितीये स्यात् कविशक्तिस्तृतीयके ॥ २२४ ॥

यदि योगी प्राण की गति एक अंगुल कम कर ले तो निष्कामता, दो अंगुल से आनन्द और तीन अंगुल से कविता की प्राप्ति होती है २२४

वाचां सिद्धिश्चतुर्थे च दूरदृष्टिस्तु पञ्चमे ।
षष्ठे त्वाकाशगमनं चण्डवेगश्च सप्तमे ॥ २२५ ॥

चार से वाणी की सिद्धि, पाँच से दूरदृष्टि, छः से आकाश में गमन और सात से अधिक वेग हो जाता है ॥ २२५ ॥

अष्टमे सिद्धयश्चैव नवमे निधयो नव ।
दशमे दश रूपाणि[1] छाया नैकादशे भवेत् ॥ २२६ ॥

आठ से अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति, नौ से नौ निधियों की प्राप्ति, दश से दशों अनेक रूप की प्राप्ति और ग्यारह अंगुल से देह की छाया का अभाव प्राप्त होता है ॥ २२६ ॥

द्वादशे हंसचारश्च गङ्गामृतरसं पिबेत् ।
आनखाग्रं प्राणपूर्णे कस्य भक्ष्यं च भोजनम् ॥ २२७ ॥

बारह अंगुल प्राण की गति कम हो जाय तो हंस गति होकर गंगा

१ "मूर्तीश्च" इति पाठान्तरम् ।

जल के समान अमृत रस का पान प्राप्त होता है। यदि शिखा से लेकर नख तक प्राणों को पूर्ण योगी कर ले तो भक्ष्य भोजन की निवृत्ति हो जाती है ॥ ३२७ ॥

एवं प्राणविधिः प्रोक्तः सर्वकार्यफलप्रदः ।
जायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः ॥ २२८ ॥

इस प्रकार संपूर्ण कार्यों के फल देनेवाली प्राण की विधि कही है, जिसका ज्ञान गुरु के वाक्य से होता है न कि विद्या और कोटि ग्रन्थों से होता है ॥ २२८ ॥

प्रातश्चन्द्रो रविः सायं यदि दैवान्न लभ्यते ।
मध्याह्नान्मध्यरात्राच्च परतस्तु प्रवर्त्तते ॥ २२९ ॥

यदि सवेरे चन्द्रस्वर और शाम को सूर्यस्वर दैववश न मिले तो मध्याह्न या आधीरात से परे प्रवृत्त होते हैं, अर्थात् मिलते हैं ॥ २२९ ॥

दूरयुद्धे जयी चन्द्रः समासन्ने दिवाकरः ।
वहन्नाड्यां गतः पादः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ २३० ॥

यदि दूर देश में युद्ध करना हो तो चन्द्रस्वर जयकारी और समीप के युद्धमें सूर्यस्वर जयकारी होता है, यदि बहती हुई नाड़ी के समय गमन के लिये पाँव रक्खा जाय तो सब सिद्धियों को देता है ॥ २३० ॥

यात्रारम्भे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके ।
शुभकार्याणि सिद्ध्यन्ति चन्द्रचारेषु सर्वदा ॥ २३१ ॥

यात्रा के आरम्भ, विवाह, गृह वा नगर के प्रवेश आदि सब शुभ कर्म चन्द्रस्वर रहते हमेशा सिद्ध होते हैं ॥ २३१ ॥

अयनतिथिदिनेशैः स्वीयतत्त्वे च युक्ते
यदि वहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसाम् ।
स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्रस्वरेण
प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापि लोके ॥ २३२ ॥

अयन, तिथि, वार, इनके स्वामियों से युक्त पुरुष का स्वर अपने तत्त्व के साथ दैवयोग से वहे तो वह पुरुष शत्रु की सेना के स्वर को रोकने ही से जीतता है और वैकुण्ठ लोक में भी उसको विघ्न नहीं होता है २३२

जीवं रक्ष जीवं रक्ष जीवाङ्के परिधाय च ।
जीवो जयति यो युद्धे जीवञ्जयति मेदिनीम् ॥ २३३ ॥

जो जीव अपने वदन पर वस्त्रों कों पहिनकर युद्ध में (जीवं रक्ष जीवं रक्ष) ऐसा जपता है वह पुरुष जीता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतता है ॥ २३३ ॥

भूमौ जले च कर्तव्यं गमनं शान्तिकर्मसु ।
वह्नौ वायौ प्रदीप्तेषु खे पुनर्नोभयेष्वपि ॥ २३४ ॥

शान्ति के कर्मों में पृथ्वी वा जलतत्त्व में गमन करे, उग्र कर्मों में अग्नि और वायुतत्त्व में गमन करे और आकाशतत्त्व में पूर्वोक्त दोनों प्रकार के कर्मों में गमन न करे ॥ २३४ ॥

जीवेन शस्त्रं बध्नीयाज्जीवेनैव विकाशयेत् ।
जीवेन प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वदा ॥ २३५ ॥

जीवस्वर में शस्त्र को बाँधे अर्थात् जिस तरफ का स्वर चले उसी हाथ से शस्त्र को धारण करे और जीवस्वर से ही शस्त्र को खोले और जीव स्वर ही में शस्त्र कोजो फेंके वह मनुष्य युद्ध में हमेशा जीतता है ॥२३५॥

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनम् ।
समुत्तरे पदं दद्यात् सर्वकार्याणि साधयेत् ॥ २३६ ॥

जो मनुष्य प्राणवायु को खींचकर घोड़े आदि सवारी पर चढ़े और पवन के उतार पर घोड़े की रकाब में पाँव रक्खे, वह सम्पूर्ण कार्यों को सिद्धि करेगा ॥ २३६ ॥

अपूर्णे शत्रुसामग्री पूर्णे वा स्वबलं तथा ।
कुरुते पूर्णतत्त्वस्थो जयत्येको वसुन्धराम् ॥ २३७ ॥

यदि अपूर्व स्वर में शत्रु की सामग्री और सम्पूर्ण स्वर में अपनी सामग्री का बल हो तो पूर्ण तत्त्व में इस प्रकार टिका हुआ पुरुष अकेला भी पृथ्वी को जीतता है ॥ २३७ ॥

या नाडी वहते चाङ्गे तस्यामेवाधिदेवता ।
संमुखेऽपि दिशा तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ॥ २३८ ॥

अपने अंग में जो स्वर चलता हो और उसी नाड़ी में उस नाड़ी का देवता हो और उसकी दिशा सामने पड़े तो वह सब काम सफल करता है ॥ २३८ ॥

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चाद्युद्धं समाचरेत् ।
सर्पमुद्रा कृता येन तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ २३९ ॥

मनुष्य पहिले मुद्रा को करे और पश्चात् युद्ध करे । जो मनुष्य सर्पमुद्रा करता है उसको सिद्धि होती है, इसमें संशय नहीं है ॥ २३९ ॥

चन्द्रप्रवाहेऽप्यथ सूर्यवाहे
भटाः समायान्ति च योद्धुकामाः ।

समीरणस्तत्त्वविदां प्रतीतो
या शून्यता सा प्रतिकार्यनाशम् ।। २४० ।।

चन्द्रस्वर वा सूर्यस्वर चलने के समय यदि वायुतत्व चलता हो और तत्वके ज्ञाताओं को बहता हुआ प्रतीत हो जाय तो युद्ध करने के लिये योद्धा भली प्रकार आवेंगे और यदि शून्यता हो तो कार्य का नाश होता है ।। २४० ।।

यां दिशं वहते वायुर्युद्धं तद्दिशि दापयेत् ।
जयत्येव न सन्देहः शक्रोऽपि यदि चाग्रतः ।।२४१।।

जिस दिशा में वायुतत्त्व चलता हो उसी दिशा में युद्ध के लिये सेना भेजे तो चाहे आगे इन्द्र भी हों तो जय होगी, इसमें सन्देह नहीं है ।।२४१।।

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदङ्गे प्राणमेव च ।
आकृष्य गच्छेत्कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरम् ।।२४२।।

जिस नाड़ी का वायुतत्त्व बहता हो उसी नाड़ी के पवन को कान तक खींचकर गमन करे तो इन्द्र को भी जीत सकता है ।। २४२ ।।

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यः पूर्णाङ्गे योऽभिरक्षति ।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि हन्यते ।। २४३ ।।

जो योद्धा शत्रु के प्रहारों से अपने सम्पूर्ण अंगों की रक्षा करता है, उस योद्धा की शक्ति को बलवान् शत्रु भी नहीं नष्ट कर सकता है ।।२४३।।

अङ्गुष्ठतर्जनीवंशे पादाङ्गुष्ठे तथा ध्वनिः ।
युद्धकाले च कर्त्तव्यो लक्षयोद्धृजयी भवेत् ।।२४४।।

अँगूठा और तर्जनी अंगुली; इनके वंश में और चरण के अँगूठे में युद्धके समय जो शब्द करे तो लाख योद्धाओं को जीत सकता है।।२४४।।

निशाकरे रवौ वारे मध्ये यस्य समीरणः ।
स्थितो रक्षेद्दिगन्तानि जयकाङ्क्षी गतः सदा ॥२४५॥

चन्द्रमा वा सूर्य के प्रवाह में यदि वायुतत्त्व चले तो उस समय गमन करनेवाला जयाकांक्षी दिगन्तों की रक्षा करता है और सदैव जय को पाता है ॥२४५॥

श्वासप्रवेशकाले तु दूतो जल्पति वाञ्छितम् ।
तस्यार्थः सिद्धिमायाति निर्गमेनैव सुन्दरि ॥२४६॥

जिस मनुष्य के श्वास प्रवेश के समय में दूत अपने मुख से उस वाञ्छित बात को कहे तो हे सुन्दरि ! गमन करते ही उस मनुष्य का मतलब सिद्ध होता है ॥२४६॥

लाभादीन्यपि कार्याणि पृष्टानि कीर्त्तितानि च ।
जीवे विशति सिद्ध्यन्ति हानिर्निःसरणे भवेत् ॥ २४७

पूछे और कहे हुए लाभ आदि सब काम जीवनाड़ी के प्रवेश में सिद्ध होते हैं और निकलने में नष्ट होते हैं ॥ २४७ ॥

नरे दक्षा स्वकीया च स्त्रियां वामा प्रशस्यते ।
कुम्भको युद्धकाले च तिस्रो नाड्यस्त्रयी गतिः ॥२४८॥

पुरुषों को अपनी दक्षिणानाड़ी, स्त्रियों की वामनाड़ी और युद्ध के समयमें कुम्भक नाड़ी श्रेष्ठ होती है । इस प्रकार तीन नाड़ी हैं और तीन ही उनकी गति हैं ॥ २४८ ॥

हकारस्य सकारस्य विना भेदं स्वरः कथम् ।
सोहं हंसपदेनैव जीवो जयति सर्वदा ॥ २४९ ॥

हकार और सकार के भेद, विना स्वरज्ञान कैसे हो सकता है, इससे जीव 'सोऽहं' और 'हंस' इन दो पदों से ही सर्वदा जय करता है ॥२४९॥

शून्याङ्गं पूरितं कृत्वा जीवाङ्गे गोपयेज्जयम् ।
जीवाङ्गे घातमाप्नोति शून्याङ्गं रक्षते सदा ॥ २५० ॥

शून्य अङ्ग को पूर्ण कर जीवाङ्ग की रक्षा करने से जय प्राप्त होती है, क्योंकि जीवाङ्ग में घात (चोट) को प्राप्त होता है और शून्याङ्ग सदैव रक्षा करता है ॥ २५० ॥

वामे वा यदि वा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः ।
पूर्णे घातो न जायेत शून्ये घातं विनिर्दिशेत् ॥२५१॥

यदि प्रश्नकर्ता वाम या दक्षिण की ओर बैठा हुआ युद्ध का प्रश्न करे और उस समय पूर्णस्वर हो तो नाश न होगा और शून्य हो तो घात होगा ॥ २५१ ॥

भूतत्वेनोदरे घातः पदस्थानेऽम्बुना भवेत् ।
ऊरुस्थानेऽग्नितत्त्वेन करस्थाने च वायुना ॥ २५२ ॥

प्रश्न के समय पृथ्वीतत्त्व हो तो उदर में, जलतत्त्व हो तो पैरों में, अग्नितत्त्व हो तो जंघाओं में और वायुतत्त्व हो तो हाथों में घाव होगा ॥ २५२ ॥

शिरसि व्योमतत्त्वे च ज्ञातव्यो घातनिर्णयः ।
एवं पञ्चविधो घातः स्वरशास्त्रे प्रकाशितः ॥ २५३ ॥

यदि आकाशतत्त्व बहे तो शिर में घाव का निर्णय जानना, इस प्रकार स्वरशास्त्र में पाँच प्रकार का घाव प्रकाशित किया गया है ॥२५३॥

युद्धकाले यदा चन्द्रः स्थायी जयति निश्चितम् ।
यदा सूर्यप्रवाहस्तु यायी विजयते तदा ॥ २५४ ॥

जब युद्ध के समय में चन्द्रमा का स्वर चलता हो तो जिस पर चढ़ाई की जाय उसकी निश्चय से जय होगी और जो सूर्य के स्वर का प्रवाह हो तो चढ़ाई करने वाले की जय होगी ॥ २५४ ॥

जयमध्ये तु सन्देहो नाडीमध्यं तु लक्षयेत् ।
सुषुम्नायां गते प्राणे समरे शत्रुसङ्कटम् ॥ २५५ ॥

जो जय में सन्देह हो तो नाड़ी के मध्य को देखे, यदि प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में चलता हो तो संग्राम में शत्रु को सङ्कट होगा ॥ २५५ ॥

यस्या नाड्या भवेच्चारस्तां दिशं युधि संश्रयेत् ।
तदाऽसौ जयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥२५६॥

जिस नाड़ी का चार हो. युद्ध के समय में उसी दिशा में खड़ा हो अर्थात् चन्द्रनाड़ी में पूर्व या उत्तर में, सूर्यनाड़ी में दक्षिण वा पश्चिम में इस प्रकार वह युद्ध करनेवाला जय प्राप्त करता है ॥ २५६ ॥

यदि सङ्ग्रामकाले तु वामनाडी यदा वहेत् ।
स्थायिनो विजयं विद्याद्रिपुवश्योदयोऽपि च ॥ २५७ ॥

यदि संग्राम के समय वामनाड़ी बहे तो स्थायी की जय और शत्रु के वश में यायी का होना समझे ॥ २५७ ॥

यदि सङ्ग्रामकाले तु सूर्यस्तु व्यावृतो वहेत् ।
तदा यायिजयं विद्यात् सदेवासुरमानवे ॥ २५८ ॥

यदि संग्राम के समय सूर्य का स्वर लगातार बहता हो तो उस समय देवता, राक्षस और मनुष्य सबके युद्ध में यायी की जय जानना ॥२५८॥

रणे हरति शत्रुस्तं वामायां प्रविशेन्नरः ।
स्थानं विषुवचारेण जयः सूर्येण धावता ॥ २५९ ॥

जो मनुष्य वामनाड़ी के प्रचार में युद्ध करता है, उसको शत्रु जीत लेता है और सुषुम्ना नाड़ी के बहते जो गमन करता है उसको स्थान मिलता है अर्थात् युद्ध नहीं होता, सूर्यस्वर के बहते गमन करता है तो जय होती है ॥ २५६॥

युद्धद्वये कृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमे जयः।
रिक्ते चैव द्वितीयस्तु जयी भवति नान्यथा ॥ २६० ॥

यदि एक समय युद्ध विषयक दो प्रश्न हों और उस समय पूर्णस्वर बहता हो तो प्रथम की जय तथा खाली स्वर बहै तो दूसरे की जय है और उससे अन्यथा नहीं ॥ २६० ॥

पूर्णनाडीगतः पृष्ठे शून्याङ्गे च तदाऽग्रतः।
शून्यस्थाने कृतः शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः॥ २६१ ॥

यदि पूर्ण नाड़ी में गया हो तो शत्रु पीठ देकर भाग जाय, शून्य नाड़ी का अङ्ग हो तो शत्रु आगे आवे और शून्य स्थान में किया हुआ शत्रु मरता है, इसमें संशय नहीं ॥ २६१ ॥

वामचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत्।
पृच्छको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः॥ २६२ ॥

यदि कोई वाम भाग में बैठ कर प्रश्न करे तथा उसके नाम के वा जिस बात को पूछे उस प्रश्न के अक्षर समाक्षर हों तो उसकी जय और विषम अक्षर हों तो पराजय होती है। यदि दक्षिण भाग में बैठ कर प्रश्न करे तो विषम अक्षरवाले की जय और सम अक्षरवाले की पराजय होती है ॥ २६२ ॥

यदा पृच्छति चन्द्रस्य तदा सन्धानमादिशेत्।
पृच्छेद्यदा तु सूर्यस्य तदा जानीहि विग्रहम् ॥२६३॥

यदि पूछने के समय में चन्द्रमा का स्वर चले तो मेल और यदि सूर्य के स्वर में प्रश्न करे तो उस समय विग्रह जानना ॥ २६३ ॥

पार्थिवे च समं युद्धं सिद्धिर्भवति वारुणे ।
युद्धे हि तेजसो भङ्गो मृत्युर्वायौ नभस्यपि ॥ २६४ ॥

यदि पृथ्वीतत्त्व में युद्ध का आरम्भ हो तो युद्ध में बराबरी, जल के तत्त्व में जय, तेज के तत्त्व में भङ्ग, वायु और आकाश तत्त्व में मृत्यु होता है ॥ २६४ ॥

निमित्ततः प्रमादाद्वा यदा न ज्ञायतेऽनिलः ।
पृच्छाकाले तदा कुर्यादिदं यत्नेन बुद्धिमान् ॥२६५॥

यदि किसी निमित्त से वा प्रमाद से प्रश्न के समय में दक्षिण या उत्तरस्वर का ज्ञान हो तो बुद्धिमान् मनुष्य यत्न से यह करे ॥ २६५ ॥

निश्चलां धारणां कृत्वा पुष्पं हस्तान्निपातयेत् ।
पूर्णाङ्गे पुष्पपतनं शून्यं वा तत्परं भवेत् ॥ २६६ ॥

निश्चल धारणा करके अपने हाथ से पुष्प को पृथ्वी पर गिरावे, जो अपने अग्रभाग में पुष्प पड़े तो पूर्ण फल और दूर पड़े तो शून्य फल जानना ॥ २६६ ॥

तिष्ठन्नुपविशंश्चापि प्राणमाकर्षयन्निजम् ।
मनोभङ्गमकुर्वाणः सर्वकार्येषु जीवति ॥ २६७ ॥

जो मनुष्य खड़ा और बैठा हुआ अपने प्राणवायु को निश्चल मन से शरीर के भीतर खींचता है, उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ २६७ ॥

न कालो विविधं घोरं न शस्त्रं न च पन्नगाः ।
न शत्रुव्याधिचौराद्याः शून्यस्था नाशितुं क्षमाः ॥२६८॥

काल, अनेक प्रकार के भयानक शस्त्र, सर्प, शत्रु, व्याधि और चौर आदि, शून्यस्थान में टिके हुए ये सब मनुष्य का नाश करने को समर्थ नहीं होते ॥ २६८ ॥

जीवेन स्थापयेद्वायुं जीवेनारम्भयेत्पुनः ।
जीवेन क्रीडते नित्यं द्यूते जयति सर्वथा ॥ २६९ ॥

जीवस्वर से वायु स्थिर करे, फिर जीव से ही वायु का आरम्भ करे, जीव से ही द्यूतक्रीड़ा का आरम्भ करे तो द्यूत में सर्वदा जय होती है ॥ २६९ ॥

स्वरज्ञानिबलादग्रे निष्फलं कोटिधा भवेत् ।
इह लोके परत्रापि स्वरज्ञानी बली सदा ॥ २७० ॥

स्वरज्ञानी के बल के आगे सब बल निष्फल होते हैं, क्योंकि स्वरज्ञानी इस लोक में और परलोक में सदैव बलवान् होता है ॥ २७० ॥

दशशतायुतं लक्षं देशाधिपबलं क्वचित् ।
शतक्रतुसुरेन्द्राणां बलं कोटिगुणं भवेत् ॥ २७१ ॥

किसी मनुष्य को दश, किसी को शत, किसी को दशसहस्र, किसी को लक्ष, किसी को देश के राज्य का बल होता है । इन्द्र और ब्रह्मा आदि देवताओं को कोटिगुना बल होता है, इसी प्रकार स्वर का बल सब बलों से कोटिगुना है ॥ २७१ ॥

देव्युवाच ।

परस्परं मनुष्याणां युद्धे प्रोक्तो जयस्त्वया ।
यमयुद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथं जयः ॥ २७२ ॥

पार्वती बोली कि मनुष्यों के परस्पर युद्ध में जय की प्राप्ति आपने कही, परन्तु जब यमराज के सङ्ग युद्ध हो तब मनुष्य की जय किस प्रकार होती है ॥ २७२ ॥

ईश्वर उवाच ।

ध्यायेद्देवं स्थिरो जीवं जुहुयाज्जीवसङ्गमे ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥ २७३ ॥

महादेव बोले कि हे पार्वति ! जो मनुष्य स्थिर होकर देवताओं का ध्यान करे और जीव संगम (कुम्भक) प्राणवायु में जीव को होम करे उस मनुष्य को इष्ट सिद्धि, महालाभ और जय प्राप्त होता है ॥ २७३ ॥

निराकारात् समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् ।
तत्साकारं निराकारज्ञाने भवति तत्क्षणात् ॥ २७४ ॥

निराकार परमेश्वर से आकारवाला सब जगत् उत्पन्न हुआ है, निराकार परमेश्वर के ज्ञान से वह जगत् साकार (आकारवाला) उसी क्षण में हो जाता है ॥ २७४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

नरयुद्धं यमयुद्धं त्वया प्रोक्तं महेश्वर ।
इदानीं देवदेवानां वशीकरणकं वद ॥ २७५ ॥

पार्वती बोली कि हे महेश्वर ! मनुष्य और यमराज का युद्ध आपने वर्णन किया, अब देवताओं के देव को वश में करना कहो ॥ २७५ ॥

ईश्वर उवाच ।

चन्द्रं सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमण्डले ।
आजन्मवशगा रामा कथितेयं तपोधनैः ॥ २७६ ॥

महादेव बोले कि, स्त्री के चन्द्रस्वर को अपने सूर्यस्वर से आकर्षण कर अपने जीवस्वर के मण्डल में टिकावे तो स्त्री जन्म भर अपने वश में होती है, यह तपस्वियों ने कहा है ॥ २७६ ॥

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते।
जीवस्थाने गतो जीवो बालाजीवान्तकारकः ॥२७७॥

पुरुष अपने जीवस्वर में स्त्री के जीवस्वर को पकड़े और स्त्री के जीवस्वर से इस प्रकार जीव के स्थान में गया हुआ जीव जिसका हो ऐसा पुरुष जन्म भर उस स्त्री के वश में रहता है ॥ २७७ ॥

रात्र्यन्तयामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने।
ब्रह्मजीवं पिबेद्यस्तु बालाप्राणहरो नरः ॥ २७८ ॥

रात्रि के पिछले प्रहर जब स्त्री लोग सोई रहती हैं उस समय जो मनुष्य ब्रह्मजीव (सुषुम्नास्वर) को पीता है वह मनुष्य स्त्रियों के प्राणों को वश में करता है ॥ ३७८ ॥

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन् काले गते सति।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी ॥२७९॥

उस काल के व्यतीत होने पर अष्टाक्षर मन्त्र को जपकर जो पुरुष अपना चन्द्रस्वर स्त्री को देता है तो वह कामिनी उसी क्षण में मोह को प्राप्त होती है ॥ २७९ ॥

शयने वा प्रसङ्गे वा युवत्यालिङ्गनेऽपि वा।
यः सूर्येण पिबेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः ॥ २८० ॥

सोने के समय वा स्त्री के संग में वा आलिंगन इत्यादि के समय जो अपने सूर्यस्वर से स्त्री के चन्द्रस्वर को पीता है, वह मनुष्य कामदेव के समान मोह करनेवाला होता है ॥ २८० ॥

शिव आलिङ्ग्यते शक्त्या प्रसङ्गे दक्षिणेऽपि वा ।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोहयेत्कामिनीशतम् ॥ २८१ ॥

यदि शिवस्वर (सूर्य) शक्तिस्वर (चन्द्र) से स्त्रीसंग के समयमें मिल जाय वा पुरुष अपना चन्द्रस्वर स्त्री को दे दे तो वह पुरुष सौ कामिनियों को मोह सकता है ॥ २८१ ॥

सप्त नव त्रयः पञ्च वारान् सङ्गस्तु सूर्यभे ।
चन्द्रे द्वितुयषट्कृत्वा वश्या भवति कामिनी ॥ २८२ ॥

स्त्री के चन्द्रस्वर को अपने सूर्यस्वर में देने के अनन्तर सात (७), नव (९), तीन (३), वा पाँच (५), बार संग हो जाय अथवा स्त्री के चन्द्रस्वर में अपना सूर्यस्वर दो (२), चार (४) वा छ (६), चार मिल जाय तो वह कामिनी वश में होती है ॥ २८२ ॥

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्त्याऽधरोष्ठयोः ।
महापद्मे मुखं स्पृष्ट्वा वारं वारमिदं चरेत् ॥ २८३ ॥

अपने सूर्य और चन्द्रस्वर को सर्प की गति से खींचकर अधरोष्ठों पर स्त्री के मुख से अपना मुखस्पर्श करके बारम्बार पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्र और सूर्य का मेल करे ॥ २८३ ॥

आप्राणमिति पद्मस्य यावन्निद्रावशं गता ।
पश्चाज्जागृतिवेलायां चोष्येते गलचक्षुषी ॥ २८४ ॥

जब तक स्त्री निद्रा के वश में रहे तब तक पूर्वोक्त प्रकार से स्त्री के मुखपद्म का पान करे, पीछे जागने के समय गला और नेत्र का चुम्बन करै ॥ २८४ ॥

अनेन विधिना कामी वशयेत्सर्वकामिनीः ।
इदं न वाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा परमेश्वरी ॥ २८५ ॥

इस विधि से कामी पुरुष सब कामिनियों को वश में करता है, परन्तु मेरी यह सच्ची आज्ञा है कि यह वशीकरण किसी अन्य पुरुष को अर्थात् लम्पट को न कहे ॥ २८५ ॥

इति वशीकरणम् ।

अथ गर्भप्रकरणम् ।

ऋतुकालभवा नारी पञ्चमेऽह्नि यदा भवेत् ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगे सेवनात् पुत्रसम्भवः ॥ २८६ ॥

ऋतुस्नान के अनन्तर जब स्त्री को पाँचवाँ दिन हो उस पुरुष का सूर्यस्वर स्त्री का चन्द्रस्वर चलता हो तो उस समय स्त्रीसंग करने से पुत्र का जन्म होता है ॥ २८६ ॥

शङ्खवल्लीं गवां दुग्धे पृथ्व्यापो वहते यदा ।
भर्तुरेव वदेद्वाक्यं गर्भं देहि त्रिभिर्वचः ॥ २८७ ॥

जिस समय पृथ्वी और जलतत्त्व बहते हों उस समय स्त्री को गौ के दूध में शंखवल्ली को पिलावे, फिर स्त्री अपने भर्ता से तीन बार भोग की प्रार्थना करे ॥ २८७ ॥

ऋतुस्नाता पिबेन्नारी ऋतुदानं तु योजयेत् ।
रूपलावण्यसम्पन्नो नरसिंहः प्रसूयते ॥ २८८ ॥

जब स्त्री ऋतुस्नान के अनन्तर उक्त औषध को पी ले तब पुरुष

ऋतुदान दे तो रूपवान्, पराक्रमी, सुन्दर और नरों में सिंह बालक पैदा होता है ॥ २८८ ॥

सुषुम्ना सूर्यवाहेन ऋतुदानं तु योजयेत् ।
अङ्गहीनः पुमान् यस्तु जायते त्रासविग्रहः ॥ २८९ ॥

जो मनुष्य सूर्यस्वर के प्रवाह के संग सुषुम्नास्वर के बहने के साथ ऋतुदान देता है, उसको अङ्गहीन और कुरूप पुत्र होता है ॥ २८९ ॥

विषमाङ्के दिवारात्रौ विषमाङ्के दिनाधिपः ।
चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥ २९० ॥

ऋतु के अनन्तर विषम दिनों में पुरुष के सूर्यस्वर दिन वा रात्रि में चले अर्थात् स्त्री का चन्द्रस्वर चले और पृथ्वी, जल, अग्नि इन तत्त्वों में गर्भाधान हो तो वन्ध्या भी पुत्र को पाती है ॥ २९० ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां स्त्रीणां चैव सुधाकरः ।
उभयोः सङ्गमे प्राप्ते वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥ २९१ ॥

यदि ऋतु के आरम्भ में पुरुषों का सूर्यस्वर और स्त्रियों का चन्द्रस्वर चले और दोनों का संगम हो जाय तो वन्ध्या को भी पुत्र प्राप्त हो जाय ॥

ऋत्वारम्भ रविः पुंसां शुक्रान्ते च सुधाकरः ।
अनेन क्रमयोगेन नादत्ते दैवदारुकम् ॥ २९२ ॥

यदि भोग के आरम्भ में पुरुष का सूर्यस्वर चले और वीर्यपात के अनन्तर चन्द्रस्वर बहने लगे तो इस क्रमयोग में स्त्री गर्भधारण नहीं करती है ॥ २९२ ॥

चन्द्रनाडी यदा प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत् ।
सूर्यो भवेत्तदा पुत्रो द्वयोर्गर्भो विहन्यते ॥ २९३ ॥

यदि गर्भवती के प्रश्न के समय में चन्द्रमा की नाड़ी चले तो गर्भ में कन्या होती है, सूर्यस्वर चले तो पुत्र होता है और दोनों स्वर चलें तो गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ २९३ ॥

पृथ्व्यां पुत्री जले पुत्रः कन्यका तु प्रभञ्जने ।
गर्भपातस्तेजसि स्यान्नभस्यपि नपुंसकः ॥ २९४ ॥

प्रश्न के समय में पृथ्वीतत्त्व हो तो कन्या, जलतत्त्व हो तो पुत्र, वायुतत्त्व हो तो कन्या, तेजतत्त्व हो तो गर्भ का पात और आकाश तत्त्व हो तो नपुंसक होता है ॥ २९४ ॥

चन्द्रे स्त्री पुरुषः सूर्ये मध्यमार्गे नपुंसकः ।
गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्णः पुत्रः प्रजायते ॥ २९५ ॥

गर्भ के प्रश्न समय में चन्द्रस्वर हो तो कन्या, सूर्यस्वर हो तो पुत्र, सुषुम्ना का स्वर हो तो नपुंसक होता है। यदि पूछने वाले दूत का पूरा अंग हो तो पुत्र पैदा होता है ॥ २९५ ॥

शून्ये शून्यं युगे युग्मं गर्भपातश्च संक्रमे ।
तत्त्ववित्स विजानीयात्कथितं तत्तु सुन्दरि ॥ २९६ ॥

हे सुन्दरि ! पूछने वाले का अङ्ग शून्य हो तो शून्य, दो स्वर चलते हों तो युग्म और यदि स्वरों का संगम या सुषुम्ना हो तो गर्भ का पात हो यह तत्त्वों के वेत्ता जानें ॥ २९६ ॥

गर्भाधानं मारुते स्याच्च दुःखी
दिक्षु ख्यातो वारुणे सौख्ययुक्तः ।
गर्भस्रावः स्वल्पजीवश्च वह्नौ
भोगी भव्यः पार्थिवेनार्थयुक्तः ॥ २९७ ॥

वायुतत्त्व में गर्भाधान हो तो दुःखवाला, जलतत्त्व में गर्भाधान हो तो दिशाओं में विख्यात और सुखी, अग्नितत्त्व में गर्भ का पात वा अल्पजीवी और पृथ्वतत्त्व में हो तो भोगी, सुन्दर, धनवान् पुत्र पैदा होता है ॥ २९७ ॥

धनवान्सौख्ययुक्तश्च भोगवानर्थसंस्थितिः ।
स्यान्नित्यं वारुणे तत्त्वे व्योम्नि गर्भो विनश्यति ॥२९८॥

जलतत्त्व में गर्भाधान हो तो धनवान्, सुखी, भोगी जिसके पास नित्य धन रहे ऐसा पुत्र पैदा होता है। आकाशतत्त्व में गर्भाधान हो तो गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ २९८ ॥

माहेन्द्रे सुसुतोत्पत्तिर्वारुणे दुहिता भवेत् ।
शेषेषु गर्भहानिः स्याज्जातमात्रस्य वा मृतिः ॥२९९॥

पृथ्वीतत्त्व में गर्भाधान हो तो पुत्र की और जलतत्त्व में हो तो कन्या की उत्पत्ति होती है। शेषतत्त्व में हो तो गर्भ की हानि वा पैदा होते ही मरण होता है ॥ २९९ ॥

रविमध्यगतश्चन्द्रश्चन्द्रमध्यगतो रविः ।
ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं न वेदैः शास्त्रकोटिभिः ॥३००॥

सूर्यस्वर के मध्य में चन्द्रस्वर की ओर चन्द्रस्वर के मध्य में सूर्यस्वर की गति गुरु से शीघ्र जाने, यह बात वेद और कोटि शास्त्रों से भी नहीं जानी जाती है ॥ ३०० ॥

इति गर्भप्रकरणम् ।

अथ संवत्सरफलम् ।

चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रातस्तत्त्वविभेदतः ।
पश्येद्विचक्षणो योगी दक्षिण चोत्तरायणे ॥ ३०१ ॥

चैत्र के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को प्रातःकाल के समय तत्त्वों के विभेद से पण्डित योगी दक्षिणायन और उत्तरायण देखे अर्थात् उस दिन के तत्त्वों के वहने से वर्ष भर के फल को देखे ॥ ३०१ ॥

चन्द्रोदयस्य वेलायां वहमानोऽथ तत्त्वतः ।
पृथिव्यापस्तथा वायुः सुभिक्षं सर्वसस्यजम् ॥३०२॥

चन्द्रस्वर के उदय के समय यदि पृथ्वी, जल वा वायुतत्त्व चले तो सब खेतियों का सुभिक्ष होता है ॥ ३०२ ॥

तेजोव्योम्नोर्भयं घोरं दुर्भिक्षं कालतत्त्वतः ।
एवं तत्त्वफलं ज्ञेयं वर्षे मासे दिनेष्वपि ॥ ३०३ ॥

यदि चन्द्रस्वर में तेज और आकाशतत्त्व चले तो घोर भय और दुर्भिक्ष होता है । इसी प्रकार समय के तत्त्वानुसार वर्ष, मास और दिनों में भी सम्पूर्ण तत्त्वों का फल जानना ॥ ३०३ ॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वेषु कर्मसु ।
देशभङ्गमहारोगक्लेशकष्टादिदुःखदा ॥ ३०४ ॥

मध्यमा (सुषुम्ना) नाड़ी क्रूर और सब कामों में दुष्ट (बुरी), देश का भङ्ग, महारोग, क्लेश, कष्ट आदि अत्यन्त दुःखों को देती है ३०४

मेषसंक्रान्तिवेलायां स्वरभेदं विचारयेत् ।
संवत्सरफलं ब्रूयाल्लोकानां तत्त्वचिन्तकः ॥३०५॥

यदि मेष संक्रान्ति के समय स्वर के भेद को विचारे तो तत्त्व का ज्ञाता मनुष्य लोगों को संवत्सर का फल कह सकता है ॥ ३०५ ॥

पृथिव्यादिकतत्त्वेन दिनमासाब्दजं फलम् ।
शोभनं च यथा दुष्टं व्योममारुतवह्निभिः ॥ ३०६ ॥

मेष संक्रान्ति के समय पृथ्वी आदि तत्त्वों से दिन, मास और वर्ष का फल शुभ जाने और आकाश, पवन और अग्नितत्त्व से दुष्ट फल जाने ॥ ३०६ ॥

सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिः स्याद्बहुसस्या वसुन्धरा ।
बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्त्वं वहेद्यदि ॥ ३०७ ॥

यदि मेषसंक्रान्ति के दिन पृथ्वीतत्त्व चले तो सुभिक्ष, देश की वृद्धि, पृथ्वी में बहुत अन्न, बहुत वृष्टि और बहुत सुख होता है ३०७

अतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च ।
बहुसस्या तथा पृथ्वी अप्तत्त्वं वै वहेद्यदि ॥ ३०८ ॥

यदि उस दिन जलतत्त्व बहे तो अतिवृष्टि, सुभिक्ष, आरोग्य, सुख और पृथिवीतत्त्व में बहुत खेती होती है ॥ ३०८ ॥

दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गः स्यादुत्पत्तिश्च विनश्यति ।
अल्पादल्पतरा वृष्टिरग्नितत्त्वं वहेद्यदि ॥ २०९ ॥

यदि अग्नितत्त्व चले तो दुर्भिक्ष, देश का भंग, उत्पत्ति का नाश और बहुत थोड़ी वृष्टि होती है ॥ ३०९ ॥

उत्पातोपद्रवाः भीतिरल्पा वृद्धिः स्युरीतयः ।
मेषसंक्रान्तिवेलायां वायुतत्त्वं वहेद्यदि ॥ ३१० ॥

यदि मेषसंक्रान्ति के समय वायुतत्त्व चले तो उत्पात, उपद्रव, भीति, अल्पवृष्टि, ईति (मूसा(१) लगना आदि छः उपद्रव विशेष) होते हैं ॥ ३१० ॥

मेषसंक्रान्तिवेलायां व्योमतत्त्वं वहेद्यदि ।
तत्रापि शून्यता ज्ञेया सस्यादीनां सुखस्य च ॥३११॥

यदि मेषसंक्रान्ति के समय आकाशतत्त्व बहे तो सस्य आदि की और सुख की शून्यता जानना ॥ ३११ ॥

पूर्णप्रवेशने श्वासे सस्यं तत्त्वेन सिद्ध्यति ।
सूर्यचन्द्रेऽन्यथाभूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः ॥ ३१२ ॥

यदि श्वास का पूर्ण प्रवेश हो जाय तो तत्त्व से धान्य की सिद्धि होती है । यदि तत्त्वों के उदय के समय सूर्य और चन्द्रस्वर विपरीत हो जाँय याने चन्द्र के योग में सूर्य और सूर्य के योग में चन्द्र हो तो अन्न का संग्रह सब सिद्धि (लाभ) को देता है ॥ ३१२ ॥

विषमे वह्नितत्त्वं स्याज्ज्ञायते केवलं नभः ।
तत्कुर्याद्वस्तुसंग्राहो द्विमासे च महर्घता ॥ ३१३ ॥

यदि विषम (दक्षिण) स्वर में अग्नितत्त्व हो अथवा आकाशतत्त्व हो तो उस समय वस्तुओं का संग्रह करे तो दो मास में महर्घता (महँगी) होगी ॥ ३१३ ॥

रवौ संक्रमते नाडी चन्द्रमान्ते प्रसर्पिता ।
खानिले वह्नियोगेन रौरवं जगतीतले ॥ ३१४ ॥

---

१ "अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः ।
अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः" ॥

यदि रात्रि के समय सूर्य की नाड़ी बहे और प्रातःकाल के समय चन्द्रमा की बहने लगे और उस समय आकाश, पवन, अग्नितत्त्व इनका योग हो तो पृथ्वीतल पर रौरव (बड़ा बड़ा अनर्थ) होता है ॥ ६१४ ॥

इति संवत्सरप्रकरणम् ।

अथ रोगप्रकरणम् ।

महीतत्वे स्वरोगश्च जले च जलमातृतः ।
तेजसि खेटवाटीस्था शाकिनी पितृदोषतः ॥ ३१५ ॥

यदि प्रश्न में पृथ्वीतत्त्व बहे तो स्वप्रारब्ध से जलतत्त्व चले तो जल-मातृकाओं से, तेजतत्त्व बहे तो खेटवाटी में रहनेवाली शाकिनी वा पितृदोष से रोग (पीड़ा) का होना समझना ॥ ३१५ ॥

आदौ शून्यगतो दूतः पश्चात्पूर्णो विशेद्यदि ।
मूर्च्छितोऽपि ध्रुवं जीवेद्यदर्थं प्रतिपृच्छति ॥ ३१६ ॥

यदि पूछनेवाला दूत पहिले शून्य अंग की तरफ आया हो और पश्चात् (पीछे) पूर्ण अंग की तरफ बैठ जाय तो मूर्च्छित रोगी निश्चय से जी जायगा, जिसके लिये वह पूछता है ॥ ३१६ ॥

यस्मिन्नङ्गे स्थितो जीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति ।
तदा जीवति जीवोऽसौ यदि रोगैरुपद्रुतः ॥३१७॥

यदि जिस अंग में जीव स्थित हो उसी अंग की तरफ बैठा हुआ प्रश्न करे तो रोगों से पीड़ित भी वह जीव अवश्य जीवेगा ॥३१७॥

दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत् ।
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं भवेत् ॥३१८॥

यदि वायु नाड़ी के दक्षिण की ओर बहती हो और दूत के मुख से भयानक वचन निकलें तो वह प्राणी जीवेगा और चन्द्रस्वर हो तो समान फल होता है ॥ ३१८ ॥

जीवाकारञ्च वा धृत्वा जीवाकारं विलोक्य च ।
जीवस्थो जीवितप्रश्ने तस्य स्याज्जीवितं फलम् ॥३१९॥

जीवाकार को धारण कर और देखकर जीव में ठहरा हुआ दूत जीने का प्रश्न करे तो उसको जीवन का फल होता है ॥ ३१९ ॥

वामचारे तथा दक्षप्रवेशे यत्र वाहने ।
तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ३२० ॥

वामनाड़ी (इड़ा) अथवा दक्षिणनाड़ी (पिंगला) इन दोनों के चलने वा प्रवेश करने के समय जो दूत प्रश्न करे तो उसकी सिद्धि होती है, इसमें संशय नहीं ॥ ३२० ॥

प्रश्ने चाधःस्थितो जीवो नूनं जीवो हि जीवति ।
ऊर्ध्वचारस्थितो जीवो जीवो याति यमालयम् ॥३२१॥

यदि प्रश्न के समय दूत अधोभाग में स्थित हो तो वह रोगी निश्चय से जीवे । यदि जीव ऊर्ध्वभाग में स्थित हो तो जीव यमालय में जायगा ॥ ३२१ ॥

विपरीताक्षरप्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि ।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदये सति ॥ ३२२ ॥

यदि विषमनाड़ी (सुषुम्ना) का उदय हो और प्रश्नकर्ता रिक्तनाड़ी में ऐसा प्रश्न करे जिसके अक्षर विषम (१, ३, ५, ७, ९ आदि हों तो विपरीत फल जानना ॥ ३२२ ॥

चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्यस्थाने तु पृच्छकः ।
तदा प्राणवियुक्तोऽसौ यदि वैद्यशतैर्वृतः ॥ ३२३ ॥

यदि अपना जीव (श्वासवायु) चन्द्रमा के चार में स्थित हो और प्रश्नकर्ता सूर्य के चार में स्थित हो तो वह रोगी चाहे सौ वैद्यों से युक्त हो तो भी मर जायगा ॥ ३२३ ॥

पिङ्गलायां स्थितो जीवो वामे दूतस्तु पृच्छति ।
तदाऽपि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः ॥ ३२४ ॥

यदि जीव पिंगला में स्थित हो और दूत वाम भाग में स्थित होकर पूछे तो रोगी मर जायगा चाहे महादेव भी रक्षा क्यों न करें ॥३२४॥

एकस्य भूतस्य विपर्ययेण
रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम् ।
तयोर्द्वयोर्बन्धुसुहृद्विपत्तिः
पक्षद्वये व्यत्ययतो मृतिः स्यात् ॥ ३२५ ॥

एक भूततत्त्व के विपरीत होने से भी रोग पुरुषों का तिरस्कार कर देते हैं और दो तत्त्वों के विपरीत होने से बन्धु तथा मित्रों पर विपत्ति होती है। यदि दो पक्ष (१ मास) व्यत्यय चला जाय तो मृत्यु होती है ॥ ३२५ ॥

इति रोगप्रकरणम् ।

अथ कालप्रकरणम् ।

मासादौ चैव पक्षादौ वत्सरादौ यथाक्रमम् ।
क्षयकालं परीक्षेत वायुचारवशात्सुधीः ॥ ३२६ ॥

मास, पक्ष और वर्ष इन तीनों के क्रम से आदि में विद्वान् मनुष्य वायु के प्रचार से क्षय (मरण) के समय की परीक्षा करे ॥ ३२६ ॥

पञ्चभूतात्मकं दीपं शिवस्नेहेन सिञ्चितम् ।
रक्षयेत्सूर्यवातेन प्राणो जीवः स्थिरो भवेत् ॥३२७॥

इस पञ्चभूतात्मक दीप (देह) को शिवरूप स्नेह (तेल) से सींचकर सूर्यरूप पवन से जो प्राणी रक्षा करता है उसका जीव स्थिर होता है ॥ ३२७ ॥

मारुतं बन्धयित्वा तु सूर्यं बन्धयते यदि ।
अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यकालेऽपि वञ्चिते ॥६२८॥

जो मनुष्य प्राणवायु को बाँधकर दिन भर सूर्यस्वर का बन्धन करता है, इस प्रकार अभ्यास के बल से सूर्य के सम्बन्ध से जो काल होता है (मनुष्य की आयु में १२० वर्ष पाँच दिन होते हैं इनसे ठगे हुए का २००, २५० इत्यादि) उस काल का बन्धन करके वह जीव जी सकता है ३२८

गगनात्स्रवते चन्द्रः कायपद्मानि सिञ्चयेत् ।
कर्मयोगसदाभ्यासैरमरः शशिसंश्रयात् ॥ ३२९ ॥

आकाश में गमन करने से चन्द्रमा की किरण नीचे गिरकर देहरूपी कमलों को सींचती है, इस प्रकार कर्म के योग से योगी चन्द्रमा का आश्रय लेने से अभ्यास के द्वारा अमर हो जाता है ॥ ३२९ ॥

शशाङ्कं वारयेद्रात्रौ दिवा वार्यो दिवाकरः ।
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥३३०॥

जो रात्रि में चन्द्रस्वर का और दिन में सूर्यस्वर का निवारण करे तो इस प्रकार अभ्यास में तत्पर वह योगी ही योगी है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३० ॥

अहोरात्रे यदैकत्र वहते यस्य मारुतः ।
तदा तस्य भवेन्मृत्युः सम्पूर्णे वत्सरत्रये ॥ ३३१ ॥

जिस मनुष्य का प्राणवायु (श्वास) दिनरात एक स्थान में ही बहता रहे, उस मनुष्य की मृत्यु तीन वर्ष में हो जायगी ॥ ३३१ ॥

अहोरात्रद्वयं यस्य पिङ्गलायां सदा गतिः ।
तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ॥ ३३२ ॥

जिस मनुष्य के श्वास की गति दो दिनरात पिंगला में रहे, तत्त्व-ज्ञाताओं ने उस मनुष्य का जीवन दो वर्ष का कहा है ॥ ३३२ ॥

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः ।
तदा संवत्सरायुस्तं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३३३ ॥

जिस मनुष्य का प्राणवायु तीस रात्रि तक एक ही नाक के पुट में स्थिर होकर चले तो विद्वान् मनुष्य उसकी अवस्था एक वर्ष की कहते हैं ॥ ३३३ ॥

रात्रौ चन्द्रो दिवा सूर्यो वहेद्यस्य निरन्तरम् ।
जानीयात्तस्य वै मृत्युः षण्मासाभ्यन्तरे भवेत् ॥३३४॥

जिस मनुष्य का रात्रि में चन्द्रस्वर और दिन में सूर्यस्वर निरन्तर बहे उस मनुष्य की छः महीने के भीतर मृत्यु होती है ॥ ३३४ ॥

लक्ष्यं लक्षितलक्षणेन सलिले भानुर्यदा दृश्यते
क्षीणो दक्षिणपश्चिमोत्तरपुरः षट्त्रिद्विमासैकतः ।
मध्यं छिद्रमिदं भवेद्दशदिनं धूमाकुलं तद्दिने
सर्वज्ञैरभिभाषितं मुनिवरैरायुः प्रमाणं स्फुटम् ॥३३५॥

जिस मनुष्य को जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब क्षीण (कटा हुआ) दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व में दीखे, वह क्रम से ६, ३, २, १ मास जीवेगा, यदि प्रतिबिम्ब के मध्य में छिद्र दीखे तो दश दिन की अवस्था जाने, यदि संपूर्ण प्रतिबिम्ब में धूमसा प्रतीत हो तो उसी दिन मृत्यु जाने, वह सर्वज्ञ मुनिवरों ने अवस्था का प्रमाण कहा है ॥ ३३५ ॥

दूतः कृष्णकषायकृष्णवसनो दन्तक्षतो मुण्डित-
स्तैलाभ्यक्तशरीररज्जुककरो दीनश्च पूर्णोत्तरः ।
भस्माङ्गारकपालपाशमुसली सूर्यास्तमायाति यः
कालीशून्यपदस्थितो गदयुतः कालानलस्याहतः[1] ॥३३६॥

यदि प्रश्न करने वाला दूत काले भगवे वस्त्र धारण कर अथवा दूत के दाँतों में घाव हो या मुण्डन कराये हो, वा दूत तैल लगाए हो, हाथ में रस्सी लिये, पूर्णोत्तर अर्थात् उत्तर देने में समर्थ हो और भस्म, अंगार, कपाल, मूसल, ये हाथ में हों, जो सूर्यास्त के समय आवे और जिसके पैर शून्य हों ; इतने प्रकार का दूत पूछने को आवे तो रोगी काल रूप अग्नि से आहत होता है अर्थात् मर जाता है ॥ ३३६ ॥

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।
अकस्मादिन्द्रियोत्पातः सन्निपाताऽग्रलक्षणम् ॥३३७॥

---

१. "कालानलस्याहत" इति पाठान्तरम् ।

जिस रोगी के चित्त में अकस्मात् विकार हो जाय और अकस्मात् उत्तम हो जाय और अकस्मात् इन्द्रियों में उत्पात हो जाय तो सन्निपात का लक्षण जानना ॥ ३३७ ॥

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृता भवेत् ।
तदरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ॥ ३३८ ॥

जिसका शरीर शीतल हो, प्रकृति में विकार हो तो संक्षेप से अरिष्ट जानना और मुझसे विस्ताररूप में सुनो ॥ ३३८ ॥

दुष्टशब्देषु रमते शुद्धशब्देषु चाप्यति ।
पश्चात्तापो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ ३३९ ॥

जो मनुष्य बुरे बुरे शब्दों को कहे और शुद्ध शब्दों को भी कहे और पीछे से पश्चात्ताप करे उसकी मृत्यु होगी इसमें संशय नहीं ॥ ३३९ ॥

हुङ्कारः शीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसन्निभः ।
महावैद्यो भवेत्तस्य तस्य मृत्युर्भवेद्ध्रुवम् ॥३४०॥

जिसका हुङ्कार शीतल हो और फूत्कार अग्नि के समान हो उसकी चाहे महान् वैद्य रक्षा करें तो भी निश्चय उसको मृत्यु होगी ॥ ३४० ॥

जिह्वां विष्णुपदं ध्रुवं सुरपदं सन्मातृकामण्डल--
मेतान्येवमरुन्धतीममृतगुं शुक्रं ध्रुवं वा क्षणम् ।
एतेष्वेकमपि स्फुटं न पुरुषः पश्येत्पुरः प्रेषितः
सोऽवश्यं विशतीह कालवदनं संवत्सरादूर्ध्वतः ॥३४१॥

जो मनुष्य जीभ, आकाश, ध्रुव, देवमार्ग, मातृकाओं का मण्डल, अरुन्धती, चन्द्रमा, शुक्र, अगस्त, इनमें से एक एक को भी कहने से न देखे, वह रोगी अवश्य ही वर्ष दिन के अनन्तर काल के मुख में जायगा ॥ ३४१ ॥

अरश्मिबिम्बं सूर्यस्य वह्नेः शीतांशुमालिनः ।
दृष्ट्वैकादशमासायुर्नरश्चोर्ध्वं न जीवति ॥ ३४२ ॥

जिस मनुष्य को सूर्य, चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब और अग्नि ; इनका किरण प्रतीत न हो उस मनुष्य की अवस्था ग्यारह मास की जाननी॥३४२॥

वाप्यां पुरीषमूत्राणि सुवर्णं रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासान्न जीवति ॥ ३४३ ॥

जिस मनुष्य को सपने में अथवा जागते समय में बावली में मल, मूत्र, सुवर्ण, चाँदी दीखे वह दश मास से परे नहीं जावेगा ॥ ३४३ ॥

क्वचित्पश्यति यो दीपं सुवर्णं च कषान्वितम् ।
विरूपाणि च भूतानि नवमासान्न जीवति ॥३४४॥

जो मनुष्य कभी दीप को अथवा कसौटी लगाया हुआ सुवर्ण और संपूर्ण भूतों को विपरीत देखे वह नौ महीने से परे नहीं जीवेगा ॥३४४॥

स्थूलाङ्गोऽपि कृशः कृशोऽपि सहसा स्थूलत्वमालम्भ्यते
प्राप्तो वा कनकप्रभां यदि भवेत्क्रूरोऽपि कृष्णच्छविः ।
शूरो भीरुसुधीरधर्मनिपुणः शान्तो विकारी पुमा-
न्नित्येवं प्रकृतिः प्रयाति चलनं मासाष्टकं जीवति॥३४५॥

जिस मनुष्य की प्रकृति इस प्रकार चलायमान हो कि मोटा एकदम दुबला हो, दुबला एकदम मोटा हो जाय, क्रूर वा कृष्ण वर्ण, सुवर्ण के समान कान्तिवाला हो, शूरवीर भीरु हो, धार्मिक अधर्मी हो जाय और शान्त चञ्चल हो, वह मनुष्य आठ महीने जीवेगा ॥ ३४५ ॥

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वा-
मूले तथा स्याद्रुधिरं च कृष्णम् ।

विद्धं[1] न स ग्लायति यत्र दृष्ट्या
जीवेन्मनुष्यः स हि सप्तमासान् ॥ ३४६ ॥

जिस मनुष्य के हाथ के तलुवे पर, जिह्वा के मूल में रुधिर काला हो जाय और जिसको गात में नोचने से दुःख नहीं हो वह मनुष्य सात मास जीवेगा ॥ ३४६ ॥

मध्याङ्गुलीनां त्रितयं न वक्रं
रोगं विना शुष्यति यस्य कण्ठः ।
मुहुर्मुहुः प्रश्नवशेन जाड्यात्-
षड्भिः स मासैः प्रलयं प्रयाति ॥ ३४७ ॥

जिस मनुष्य की बीच की तीन अँगुली न मुड़ें, रोग के बिना ही कण्ठ सूख जाय और जिसको वारम्वार पूछने से जड़ता हो अर्थात् पूर्वापर का अनुसन्धान न रहे वह मनुष्य छः महीने में मरण को पाता है ॥ ३४७ ॥

न यस्य स्मरणं किञ्चिद्विद्यते स्तनचर्मणि ।
सोऽवश्यं पञ्चमे मासि स्कन्धारूढो भविष्यति ॥३४८॥

जिस मनुष्य के स्तनों का चाम बधिर हो जाय वह मनुष्य पाँचवे महीने में चार मनुष्यों के कन्धे पर अवश्य चढ़ेगा [मरेगा] ॥ ३४८ ॥

यस्य न स्फुरति ज्योतिः पीड्यते नयनद्वयम् ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ॥३४९॥

जिस मनुष्य के नेत्रों की ज्योति प्रकाशित न हो और दोनों नेत्रों में पीड़ा हो, उस मनुष्य का मरण चौथे मास में अवश्य कहा है ॥ ३४९ ॥

---

१. 'विद्धं न च' इति पाठान्तरम् ।

दन्ताश्च वृषणौ यस्य न किञ्चिदपि पीड्यते ।
तृतीयं मासमावश्यं कालाज्ञायां भवेन्नरः ॥ ३५० ॥

जिस मनुष्य के दाँत और अण्डकोशों में दबाने से पीड़ा कुछ भी न हो वह तीसरे महीने में काल की आज्ञा में पहुँचेगा (मरेगा) ॥३५०॥

कालो दूरस्थितो वाऽपि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वदामि समासेन यथाऽऽदिष्टं शिवागमे ॥ ३५१ ॥

दूरपर स्थित भी काल जिस उपाय से दीख जाय उस उपाय को शिवशास्त्र के अनुसार संक्षेप से कहता हूँ ॥ ३५१ ॥

एकान्तं विजनं गत्वा कृत्वाऽऽदित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षयेन्निजच्छायां कण्ठदेशे समाहितः ॥ ३५२ ॥

एकान्त विजन (वन) में जाकर और सूर्य को पीठ की ओर कर के अपनी छाया को सावधानी से कण्ठदेश में देखे ॥ ३५२ ॥

ततश्चाकाशमीक्षेत ह्रीं परब्रह्मणे नमः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः पश्यति शङ्करम् ॥ ३५३ ॥

फिर आकाश को देखे और "ह्रीं परब्रह्मणे नमः" इस मन्त्र का १०८ बार जप करे तो वह मनुष्य शिवजी को देखेगा ॥ ३५३ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ।
वर्षद्वयेन तेनाथ कर्त्ता हर्ता स्वयं प्रभुः ॥ ३५४ ॥

जिन शिवजी का रूप शुद्धस्फटिक के तुल्य है और जो नानारूप को धारण करते हैं, इस प्रकार छः महीने के अभ्यास करने से भूचरों

(प्राणी) का राजा होता है और दो वर्ष के अभ्यास करने से कर्ता हर्ता स्वयं प्रभु हो जाता है ॥ ३५४ ॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानन्दमेव च ।
सतताभ्यासयोगेन नास्ति किञ्चित्सुदुर्लभम् ॥३५५॥

निरन्तर अभ्यास करने से (मनुष्य) भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों के ज्ञान और परम आनन्द का प्राप्त करता है उसको कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती ॥ ३५५ ॥

तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले ॥
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥३५६॥

जिस योगी को निर्मल आकाश में उन शिवजी का रूप कृष्ण वर्ण दीखे वह योगी छः महीने में मृत्यु को पाता है, इसमें संशय नहीं ॥३५६॥

पीते व्याधिं भयं रक्ते नीले हानिं विनिर्दिशेत् ।
नानावर्णेऽथ चेत्तस्मिन्सिद्धश्च गीयते महान् ॥३५७॥

पीला दीखे तो व्याधि, लाल से भय और नील से हानि होती है। यदि उसमें नानावर्ण दीखे तो योगी सिद्धियों को पाता है ॥३५७॥

पदे गुल्फे च जठरे विनाशः क्रमशो भवेत् ।
विनश्यतो यदा बाहू स्वयं तु म्रियते ध्रुवम् ॥३५८॥

यदि छाया में पैर, गुल्फ (टखना), पेट ये न दीखें या बाँह न दीखे तो निश्चय मरण को पाता है ॥ ३५८ ॥

वामबाहुस्तथा भार्या नश्यतेति न संशयः ।
दक्षिणे बन्धुनाशो हि मृत्युं मासं विनिर्दिशेत् ॥३५९॥

यदि वाम भुजा न दीखे तो भार्या नष्ट होगी इसमें संशय नहीं, दक्षिण भुजा न दीखे तो बन्धुओं का नाश होगा और एक मास में अपनी मृत्यु होगी ॥ ३५९ ॥

अशिरो मासमरणं विना जङ्घं दिनाष्टकम् ।
अष्टाभिः स्कन्धनाशेन छायालोपेन तत्क्षणात् ॥३६०॥

शिर न दीखे तो मासभर, जंघा न दीखे तो आठ दिन में, कंधे न दीखे तो आठ दिन में और सर्वथा छाया न दीखे तो उसी क्षण में मृत्यु जानना ॥ ३६० ॥

प्रातः पृष्ठगते रवौ च निमिषाच्छायाङ्गुलीश्चाधरं
दृष्ट्वाऽर्धेन मृतिस्त्वनन्तरमहो छायां नरः पश्यति ।
तत्कर्णांसकरास्यपार्श्वहृदयाभावे क्षणार्धात्स्वयं
दिङ्मूढो हि नरःशिरोविगमतो मासांस्तु षड्जीवति३६१

जो प्रातःकाल के समय सूर्य को पीठ की तरफ करके छाया पुरुष की अङ्गुली और होंठ न देखे तो निमिषमात्र में और फिर छाया को और अपने को न देखे तो आधे निमिष में मृत्यु होगा और छाया के कान कंधे हाथ मुख पार्श्व हृदय न दीखे तो आधे क्षण में मृत्यु होगी और छाया पुरुष का शिर न दीखे और स्वयं दिशाओं का ज्ञान न रहे तो मनुष्य छः महीने जीवेगा ॥ ३६१ ॥

एकादिषोडशाहानि यदि भानुर्निरन्तरम् ।
वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिकः[1] ॥३६२॥

---

१ 'मासिके' इति पुस्तकान्तरे ।

जिस मनुष्य का एक दिन से सोलह दिन पर्यन्त नियम से सूर्य स्वर ही चलता रहे उस मनुष्य की मृत्यु पन्द्रह दिन के भीतर हो जायगी ॥ ३६२ ॥

संपूर्णं वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते ।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥३६३॥

जिस मनुष्य का निरन्तर सूर्य स्वर ही बहता रहे और चन्द्र स्वर कभी न दीखे तो उस मनुष्य की मृत्यु एक पक्ष में होती है, यह काल के ज्ञानियों ने कहा है ॥ ३६३ ॥

मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं प्रवर्तते ।
तदाऽसौ चलितो ज्ञेयो दशाहे म्रियते ध्रुवम् ॥३६४॥

जिस मनुष्य के मूत्र, मल, वायु एक साथ निकसे उसको चलाचली पर जाने, वह दश दिन में अवश्य मर जावेगा ॥ ३६४ ॥

सम्पूर्णं वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते ।
मासेन जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥३६५॥

जिस मनुष्य का बराबर चन्द्र स्वर वहता है और सूर्य स्वर होने पर भी न दीखे वह मनुष्य एक मास में मर जायगा, यह काल के ज्ञानियों ने कहा है ॥ ३६५ ॥

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥३६६॥

अरुन्धती, ध्रुव, विष्णु के तीन पद, चौथा मातृकाओं का मण्डल इनको जो न देखें उसको आयु से हीन समझना ॥ ३६६ ॥

अरुन्धती भवेज्जिह्वा ध्रुवोनासाग्रमेव च ।
भ्रुवो विष्णुपदं ज्ञेयं तारकं मातृमण्डलम् ॥३६७॥

जिह्वा को अरुन्धती, नासिका के अग्रभाग को ध्रुव, भ्रुकुटियों को विष्णुपद और तारकाओं को मातृमण्डल कहते हैं ॥ ३६७ ॥

नव ध्रुवं सप्त घोषं पञ्च तारां त्रिनासिकाम् ।
जिह्वामेकदिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम् ॥३६८॥

जो भ्रुकुटी न दीखे तो नौ दिन में, कानों से शब्द न सुने तो सात दिन में, तारा न दीखे तो पाँच दिन में, नासिका न दीखे तो तीन दिन में, जिह्वा न दीखे तो एक दिन में मनुष्य का निश्चय मरण कहा है ॥ ३६८ ॥

कोणावक्ष्णोरंगुलीभ्यां [1]किञ्चिदापीड्य लोकयेत् ।
यदा न दृश्यते विन्दुर्दशाहेन भवेन्मृतिः ॥ ३६९ ॥

नेत्रों के कोनों को अङ्गुलियों से कुछ दबाकर देखे यदि दबाने से जल की विन्दु न निकले तो जान लो कि दश दिन में मर जायगा ॥३६९॥

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन च ।
जपैर्ध्यानेन योगेन जायते कालवञ्चना ॥ ३७० ॥

तीर्थों के स्नान, दान, तप, सुकृत्, जप, ध्यान, योग इनसे काल को वञ्चना हो जाती है अर्थात् आया हुआ काल भी टल जाता है ॥३७०॥

शरीरं नाशयन्त्येते दोषा धातुमलास्तथा ।
समस्तु वायुर्विज्ञेयो बलतेजोविवर्धनः ॥ ३७१ ॥

धातु और मल आदि ये दोष शरीर को नष्ट कर देते हैं और वायु की समानता बल और तेज बढ़ानेवाली होती है ॥ ३७१ ॥

---

१ 'किञ्चित्पीड्य निरीक्षयेत्' इति पाठान्तरम् ।

रक्षणीयस्ततो देहो यतो धर्मादिसाधनम् ।
योगाभ्यासत्वमायान्ति साधुजप्यास्तु साध्यताम् ॥
असाध्याञ्जीवितं घ्नन्ति न तत्रास्ति प्रतिक्रिया ३७२

इससे उस देह की रक्षा करनी जो धर्म आदि का साधन है । जप करने वाले योगाभ्यास को पाते हैं और योग के अभ्यास से असाध्य साध्य हो जाता है । जो योगाभ्यास न हो तो असाध्य होकर मर जाते हैं उनका कोई प्रतीकार (इलाज) अन्य नहीं है ॥ ३७२ ॥

येषां हृदि स्फुरति शाश्वतमद्वितीयं
तेजस्तमोनिवहनाशकरं रहस्यम् ।
तेषामखण्डशशिरम्यसुकान्तिभाजां
स्वप्नेऽपि नो भवति कालभयं नराणाम् ॥३७३॥

जिन मनुष्यों के हृदय में अनादि, अद्वितीय, अन्धकार के समूह का नाश करने वाला और गोपनीय तेज (शिवस्वरोदय का ज्ञान) फुरता है, अखण्ड चन्द्रमा के समान रमणीय कान्ति वाले ऐसे उन मनुष्यों को स्वप्न में भी काल का भय नहीं होता ॥ ३७३ ॥

इडा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वतीं विद्यात्प्रयागादिसमं तथा ॥ ३७४ ॥

इड़ा नाड़ी गंगा, पिंगला नाड़ी यमुना, और मध्य की सुषुम्ना नाड़ी सरस्वती नदी जानना, इन तीन नदियों के संगम को प्रयाग के समान समझना ॥ ३७४ ॥

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
बद्धपद्मासनो योगी बन्धयेदुड्डियानकम् ॥ ३७५ ॥

प्रथम साधन को ही शीघ्र प्रतीति का कारण कहा है, इससे योगी पद्मासन को बाँधकर उड्डियान आसन को बाँधे अर्थात् अपान की गति को ऊपर की ओर करके नाभिरन्ध्र के समीप लावे ॥ ३७५ ॥

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः ।
ज्ञातव्यो योगिभिर्नित्यं देहसंशुद्धिहेतवे ॥ ३७६ ॥

योगी अपनी देह की भली प्रकार शुद्धि के लिये पूरक कुम्भक और रेचक इन तीनों प्राणायामों को जाने ॥ ३७६ ॥

पूरकः कुरुते वृष्टिं धातुसाम्यं तथैव च ।
कुम्भकः स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्द्धनम् ॥ ६७७ ॥

उन तीनों में पूरक प्राणायाम (बाहर की वायु को भीतर खींचना) वृष्टि करता है और देह को खींचकर संपूर्ण धातुओं को समान करता है और कुम्भक प्राणायाम (बाहर भीतर की वायु को स्थिर रखना) देह की धातुओं का स्तम्भन [जहाँ तहाँ रखना] करता है और जीव की रक्षा को बढ़ाता है ॥ ३७७ ॥

रेचको हरते पापं कुर्याद्योगपदं व्रजेत् ।
पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबन्धं च कारयेत् ॥ ३७८ ॥

रेचक प्राणायाम (भीतर की वायु बाहर निकालना) पाप को हरता है इस प्रकार जो प्राणायाम करता है वह योगपद को प्राप्त करता है फिर जो योगी समान रूप से टिकता है वह लयबन्ध करता है अर्थात् मृत्यु को रोकता है ॥ ३७८ ॥

कुम्भयेत्सहजं वायुं यथाशक्ति प्रकल्पयेत् ।
रेचयेच्चन्द्रमार्गेण सूर्येणापूरयेत्सुधीः ॥ ३७९ ॥

स्वाभाविक वायु को अपनी शक्ति के अनुसार कुम्भक प्राणायाम से रोके, चन्द्रस्वर से रेचक करे और सूर्य स्वर से पूरक प्राणायाम को बुद्धिमान मनुष्य करे ॥ ३७९ ॥

चन्द्रं पिवति सूर्यश्च सूर्यं पिवति चन्द्रमाः ।
अन्योन्यकालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥ ३८० ॥

जिनके चन्द्रस्वर को सूर्यस्वर और सूर्यस्वर को चन्द्रस्वर परस्पर समय समय पर पीवें वह चन्द्रमा और तारों की स्थिति पर्यन्त जीवेगा ॥ ३८० ॥

स्वीयांगे वहते नाडी तन्नाडीरोधनं कुरु ।
मुखबन्धनमुञ्चन्वै पवनं जायतें युवा ॥३८१॥

अपने अङ्ग में जो नाडी वहती हो उसको रोककर अपने मुख को बाँध कर मुख से पवन को न निकलने दे वह योगी वृद्ध अवस्था से युवा अवस्था को प्राप्त करता है ॥ ३८१ ॥

मुखनासाक्षिकर्णान्तानंगुलीभिर्निरोधयेत् ।
तत्त्वोदयमिति ज्ञेयं षण्मुखीकरणं प्रियम् ॥३८२॥

मुख, नासिका, नेत्र, कान इनको अपनी अङ्गुलियों से रोके इसीको तत्त्वोदय, षण्मुखीकरण और प्रिय जानना ॥ ३८२ ॥

तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डलं लक्षणं त्विदम् ।
स वेत्ति मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवित् ॥३८३॥

उसका रूप यह है कि वह योगी तत्त्वों का रूप, गति, स्वाद, मण्डल, लक्षण इन सब को जगत में जानता है और तत्वों के हेलमेल में भी पृथक् २ मार्ग को जान सकता है ॥ ३८३ ॥

निराशो निष्कलो योगी न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
वासनामुन्मनां कृत्वा कालं जयति लीलया ॥३८४॥

आशा रहित और शुद्धरूप योगी किसी वस्तु की चिन्ता न करे और वासनाओं को त्यागकर (वह) अनायास काल को जीतता है ॥ ३८४ ॥

विश्वस्य वेदिकाशक्तिर्नेत्राभ्यां परिदृश्यते ।
तत्रस्थं तु मनो यस्य याममात्रं भवेदिह ॥ ३८५ ॥

सब विश्व के जानने की शक्ति नेत्रों से दीखती है उस शक्ति के विषय जिस योगी का मन एक प्रहर मात्र टिके ॥ ३८५ ॥

तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटिकात्रयमानतः ।
शिवेनोक्तं पुरा तन्त्रे सिद्धस्य गुणगह्वरे ॥३८६॥

उस योगी की अवस्था प्रतिदिन तीन तीन घटिका के प्रमाण से बढ़ती है, यह बात सिद्ध के गुणों की गुफारूप तन्त्रशास्त्र में शिवजी ने कही है ॥ ३८६ ॥

बद्ध्वा पद्मासनं ये गुदगतपवनं संनिरुद्ध्यामुमुच्चै-
स्तन्तस्यापानरन्ध्रक्रमजितमनिलप्राणशक्त्यानिरुद्ध्य ।
एकीभूतं सुषुम्नाविवरमुपगतं ब्रह्मरन्ध्रं च नीत्वा
निक्षिप्याकाशमार्गेशिवचरणरतायांतितेकेपिधन्याः ॥

योगी पद्मासन को बाँधकर गुदा में स्थित पवन (अपान वायु) को रोककर उसको उंचे को ले जाय और अपानरन्ध्र में जीते (स्थिर) हुए उसको प्राणशक्ति के संग रोककर दोनों की एकता करे जब वे दोनों एक हो जायँ और सुषुम्ना नाड़ी के रन्ध्रमें पहुँच जावे फिर ब्रह्म रन्ध्र में

लेजाकर आकाशमार्ग में छोड़ दे, इस प्रकार शिवजी के चरणों में रत जो कोई योगी जाते हैं (मरते हैं) वे धन्य हैं ॥ ३८७ ॥

एतज्जानाति यो योगी एतत्पठति नित्यशः ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वांछितं फलम् ॥३८८॥

जो योगी इसको जानता है और नित्य पढ़ता है वह सम्पूर्ण दुःखों से रहित होकर वाञ्छित फल को प्राप्त करता है ॥ ३८८ ॥

स्वरज्ञानं नरे यत्र लक्ष्मीः पादतले भवेत् ।
सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत् ॥३८९॥

जिस मनुष्य को स्वर का ज्ञान है उसके चरणों के नीचे लक्ष्मी है और उसके शरीर में और जहाँ वह जाय वहाँ सुख उसको होता है ॥ ३८९ ॥

प्रणवः सर्ववेदानां ब्राह्मणो भास्करो यथा ।
मृत्युलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ॥ ३९० ॥

सब वेदों में प्रणव, ब्राह्मण, सूर्य जैसा पूज्य है, इसी प्रकार इस मृत्युलोक में स्वरज्ञानी पुरुष भी पूज्य है ॥ ३९० ॥

नाडीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च ।
नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटिरसायनम् ॥ ३९१ ॥

जो मनुष्य पूर्वोक्त तीनों नाड़ियों को जानता है और जिसको तत्त्व का ज्ञान है उसके तुल्य लक्षकोटि रसायन भी नहीं है ॥ ३९१ ॥

एकाक्षरप्रदातारं नाडीभेदविवेचकम् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चानृणं भवेत् ॥३९२॥

नाड़ी का विवेचन करने वाला जो एक अक्षर भी दे तो पृथ्वी में वह द्रव्य नहीं है, जिसको देकर अनृणी हो जाय अर्थात् उसका बदला दे सके ॥ ३९२ ॥

स्वरतत्त्वं तथा युद्धं देवि वश्यं स्त्रियस्तथा।
गर्भाधानं च रोगश्च कलार्धेनैव मुच्यते ॥ ३९३ ॥

स्वर का तत्त्व, युद्ध, स्त्रियों का वशीकरण, गर्भाधान और रोग ये सब आधी कला (घड़ी) में इस प्रकार कहे जाते हैं ॥ ३९३ ॥

एवं प्रवर्तितं लोके प्रसिद्धं सिद्धयोगिभिः।
चन्द्रार्कग्रहणे जाप्यं पठतां सिद्धिदायकम् ॥ ३९४ ॥

इस प्रकार यह स्वरोदय लोक में प्रवृत्त हुआ जिसको योगियों ने प्रसिद्ध किया। इसको चन्द्र सूर्य के ग्रहण में जो जपता है, वा पढ़ता है उसको सम्पूर्ण सिद्धियों को देता है ॥ ३९४ ॥

स्वस्थाने तु समासीनो निद्रां चाहारमल्पकम्।
चिन्तयेत्परमात्मानं यो वेद स भविष्यति ॥ ३९५ ॥

जो अपने स्थान पर बैठा रहे, निद्रा और भोजन अल्प करे, परमात्मा की चिन्ता करे और जाने, वह मनुष्य स्वरज्ञानी हो जायगा ॥ ३९५ ॥

इत्युमामहेश्वरसंवादे स्वरोदयज्ञानं सम्पूर्णम्।

मुद्रक—पं० वैकुंठनाथ भार्गव, आनन्दसागर प्रेस, गायघाट, बनारस।